स्मृति-बिंब — विवेचना-खंड

नाटककार - गीतकार - पत्रकार

दादा शिवकुमार चवरे के

यादगार नाटकों की विवेचना

मणिमोहन चवरे 'निमाड़ी'

शिवकुमार चवरे के नाटकों का विवेचनात्मक अध्ययन

मणिमोहन चवरे 'निमाड़ी'

अनुक्रम

1	तमसातट	111
2	मीरा का विषपान	114
3	अछूत कन्या	116
4	आजादी की आग	118
5	टूटा तारा	120
6	ज्वाला	121
7	स्वर्णरेखा	123
8	यशोधरा	126
9	पेटतंत्र	128
10	आजादी की दीवानी	129
11	माँ-भारती	131
12	अपना राज	133
13	घर की आग	135
14	नौकरी चाहिए	137
15	भूस के लड्डू	139
16	गर्वित रूप	141
17	ऋतुराज	142
18	नवचेतन जागा	143
19	हम कहाँ !	144
20	अपराधी कौन	145
21	मैं आजादी हूँ	146
22	नई किरण	147
23	सबै भूमि गोपाल की	148
24	हमको जीने दो	149
25	पंचशील	150
26	दुकान नम्बर 420	151
27	सुख की खोज	152

निमाड़ी नाटिकाएँ

28	नानी माय	154
29	गेंदा माय	154
30	नाना को याव	154

बालिका कला मंदिर, खंडवा के सदस्य एवं कलाकार (1954) गीति नाट्य 'तमसातट

बायें से कुर्सी पर बैठे हुए - श्री बाबूलाल मारकंडे, श्री कुंजबिहारीलाल सरमंडल, श्री सोहनलाल गुप्ता (वकील), जिलाधीश महाराजा सा., श्री शिवकुमार चवरे, श्री मूलचंद शर्मा (द्वितीय पंक्ति में) चित्रलेखा भट, शारदा श्रीमाली, सुधा सोहनी, बसंती पहारे (तृतीय पंक्ति में) प्रकाश गुप्ता, वनिता सोहनी, सविता उपाध्याय, प्रतिभा सोहनी, प्रमिला शर्मा, सुबाला सरमंडल (पीछे की पंक्ति में) छोटेलाल दफ्तरी, गोविंदराव शुक्ल, विपिन उपाध्याय, शरद शकरगाये, शरदकुमार चवरे, गोपाल साध, निर्मल अरझरे, श्रीधर पगारे, बालकृष्ण भट्ट, विनोद शुक्ल (नीचे बैठे हुए) आशा गुप्ता, सुनील उपाध्याय, विभा सोहनी, रजनी चवरे, वीणा सराफ, दीपा गुप्ता

तमसातट

बहुचर्चित नाटक 'तमसातट' गीत नाट्य के सर्जक शिवकुमार चवरे ने करोड़ों दिलों में प्रभु पद प्राप्त कर चुके राम-सीता के हृदय में मानवीय संवेदनाओं को खंगाला है। इस पौराणिक नाटक में, तमसा नदी के किनारे पिता-पुत्रों (राम-लव, कुश) के प्रथम मिलन की संतृप्ति और पति-पत्नी (राम-सीता) के अंतिम मिलन की अतृप्ति को बड़ी ही संजीदगी से प्रस्तुत किया गया है। प्रसिद्ध रामकथा को आधार बनाकर, नाटककार ने तुलसी के आराध्य, राम-सीता के चरित्रों में अंतर्जीवन के काव्यात्मक प्रतिपादनों के द्वारा ही बहिर्जीवन की सशक्त अभिव्यंजना की है।

अयोध्या से लगभग बीस किलोमीटर की दूरी पर तमसा नदी का पावनतट है। आज से लगभग सात हजार वर्ष पूर्व, चौदह वर्ष के लिए वनवास जाते समय रघुकुलनन्दन राम, शेषावतार लक्ष्मण तथा जगज्जननी जानकी ने, अयोध्या से निकलने के बाद, यात्रा के प्रथम दिन, 5 जनवरी, 5089 ई.पू. यहाँ रात्रि विश्राम किया था। इस घटना के उनतीस वर्षों बाद उसी तमसा के तट पर, महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में, एक अनोखा पारिवारिक मिलन होता है।

महाबली लंकापति रावण का संहार करने वाले, अतुलित बलधाम, अयोध्यापति श्रीराम अपने पंद्रह वर्षीय जुड़वाँ बेटों से, अश्वमेध युद्ध में हारकर, सुखद आश्चर्य से, पहली बार उन्हें गले लगाते हैं। अपने पुत्रों का पराक्रम देखकर पिता की आँखें तृप्त एवं हृदय गद्‌गद् हो जाता है। कोशल राज्य की महारानी सीता की दीन दशा देखकर करुणानिधि की करुणा पिघलकर पश्चाताप के आँसुओं में बहने लगती है।

सकल सृष्टि को सुखी-सम्पन्न करने वाले, जग पालनहार श्रीराम विचार मंथन करते हैं कि तीस वर्षों के वैवाहिक जीवन में वे अपनी जीवन संगिनी को न तो सुख दे पाए और न ही उसका उचित भरण-पोषण कर पाए। कुश और लव के मुख से सीता के दुखों की दास्तान सुनकर दीनानाथ की बेकली फूटकर बह निकली -

सत्य बात कहते हैं बालक भोले-भाले।
फूट पड़े हैं आज दुखों के छल-छल छाले।
बहुत दुखी हूँ किंतु बँधा हूँ राजधर्म में।
अपनी पीड़ा का बताऊँ कौन मर्म मैं।

नाटककार यहाँ भगवान से अपनी गलती स्वीकार करवाते हैं। क्षमा के सागर राम अपने चरणों में लोटी सीता को उठाते हैं -

उठो क्षमा कर दो मुझे, देवी। तुम महान हो।....
मैं जन-जन का सेवक, उनकी इच्छा पूरी की है।
जनता की वाणी की पीड़ा,
मैंने हँसते-हँसते पी है।

रचनाकार ने अपनी इस अमरकृति में देवी सीता के नारी मन के अंतस्ताप का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है -

तन को बन्धन है, मन को बाँधा किसने।
निर्बाध विचरता, गति को जाना किसने।
यह तमसातट, वह कहाँ अयोध्या नगरी।
जैसे मैं उसमें व्याप्त हो गई सगरी।

मन के बादलों को टोही-दूत बनाकर अयोध्या भेजते हुए सीता की व्यथा कहती है -

वही मेघ से कांतिमान प्रभु।
तू दरसन कर आना (बादल)।
वे उन्मन हों चुप-चुप जाना, सपना टूट न जाए।
तेरे तरल परस से उनको मेरी सुधि आ जाए।

नाटक और काव्य की संयुक्त शैली में लिखे गए, संगीत-रूपक 'तमसातट' के कथानक में अनुभूतियों का प्रकाशन तथा घटनाओं का संघर्ष है।

पश्चिम की शैली से प्रभावित इस रूपक में नाटककार ने अंतर्जीवन, बहिर्जीवन, वैयक्तिकता, पौराणिकता, भावमय पात्र-योजना, बंधन मुक्त छंद योजना, सरल भाषा शैली, बिम्ब विधान इत्यादि तत्वों का समावेश करते हुए विचारात्मक वस्तु व्यंजना का सौंदर्य दर्शन कराया है। दैवी पात्रों के चरित्र में रचनाकार ने मानवीय संवेदनाओं की सफल पच्चीकारी की है।

हिन्दी साहित्य में काव्य-नाटकों की विकास यात्रा भारतेन्दु की 'चंद्रावली' से आरम्भ होती है। इस कड़ी में धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' सर्वश्रेष्ठ काव्य संग्रह है। दिलचस्प बात यह है कि धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' और शिवकुमार चवरे का 'तमसातट' सम-सामयिक रचनाएँ हैं। दोनों का रचनाकाल 1954 के आसपास का है। 'अंधा युग', महाभारत में युद्ध की समाप्ति पर लिखी गई रचना है जबकि 'तमसातट', रामायण में अश्वमेध युद्ध के बाद की।

कथा-सार

कौशल नरेश की मर्यादा, लोकधर्म की लज्जा और प्रियतम के विरह की त्रिवेणी में गुंफित तथा लोकन्याय से शापित, अयोध्या की महारानी सीता, तमसा नदी के तट पर वाल्मीकि-आश्रम में निर्वासित जीवन व्यतीत कर रही है। रघुकुल के कुलदीपक, बड़े पुत्र कुश और छोटे लव, गुरुवर वाल्मीकि के मार्गदर्शन तथा माता सीता की ममतामयी छाँव में पल-बढ़ रहे हैं। मालती और बासंती सखियों के गीतों में मुखरित होकर विरहिणी सीता की व्यथा-कथा ध्वनित हो रही है।

जीवन के कड़वे घूँट गटकने के लिए नर्तकियों के भावनृत्य, रूपक में, अनुपान बन पड़े हैं। लव-कुश को गुरु आश्रम में राजकुलोचित शिक्षा प्राप्त हो रही है। दोनों भाई रामकथा गाते रहते हैं।

लोकन्याय के नाम पर पावन नारी को कलंकित किया जाता है, निर्वासित किया जाता है। इस निष्ठुर निर्णय के प्रतिकार में भाग्यविधात्री देवी रात के अंधकार में आकर अयोध्या नगरी का अधोभाग्य लिख जाती है। दुर्भाग्य की छाया राजभवन की नीतियों पर पड़ने लगती है। आने वाली विपदाओं के संकेत उभरने लगते हैं।

अयोध्या की राजसभा में कुलगुरु वशिष्ठ, राजा राम को सार्वभौम सुराज हेतु अश्वमेध यज्ञ के लिए प्रेरित करते हैं। यज्ञ में सहधर्मिणी की अनुपस्थिति में उनकी स्वर्ण प्रतिमा रखने की सलाह दी जाती है। अनुज लक्ष्मण के भारी विरोध के बावजूद, सूर्यवंशी पताका से सुसज्जित अश्व, दिग्विजय के लिए छोड़ दिया जाता है।

राघव का अश्व तमसा के तट पर पहुँचता है जिसे कुश और लव खेल ही खेल में पकड़ लेते हैं। युद्ध होता है। अश्वरक्षक सैनिक परास्त हो जाते हैं। लक्ष्मण भी घायल हो जाते हैं। चिन्तातुर सीता को महर्षि ढाढ़स देते हुए बताते हैं कि अब रघुनंदन यहाँ आयेंगे और रामायण संपूर्ण हो जायेगी।

भगवान् श्रीराम तमसातट स्थित आश्रम में पधारते हैं। यहाँ अश्वमेध को चुनौती देने वाले, रामकथा गायक कुश और लव से उनकी भेंट होती है। वे वीर तेजस्वी बालकों को गले लगाते हैं, तभी महर्षि वाल्मीकि वहाँ आकर पिता-पुत्रों का परिचय कराते हैं। सर्वशक्तिमान भगवान राम की सेना को पराजित करने वाले लव-कुश अपने पिता के चरणों में शीश नवाते हैं। पश्चाताप एवं प्रसन्नता से पुलकित, सौमित्र, सुमंत और साकेतवासी धन्य हो जाते हैं।

श्रीराम पुत्रों से, परित्यक्त पत्नी की सुधि लेते हैं। लव बताता है कि - ''माता बेचारी जीवित है।'' इसी बीच वियोगिनी सीता आकर न्यायमूर्ति राजा राम के चरणों में लोट जाती है।

अनुतापी आर्य, लुंठित भार्या को उठाते हैं - ''उठो! क्षमा कर दो मुझे, देवी तुम हो महान।'' आत्मग्लानि से नमित नारायणी उभरती है - ''नहीं प्रभु! युगों-युगों की मैं नारी अज्ञान।'' इस प्रकार राजधर्म का लोकधर्म से साक्षात्कार होता है -

तमसातट पर आज हो गया, जीव-ब्रह्म का संगम।
धन्य-धन्य तर गए ताप से, वनवासी जड़, जंगम।

तमसातट

विधा	:	संगीत रूपक
कथावस्तु	:	पौराणिक राम कथांश
पात्र	:	श्रीराम, सीता, वाल्मीकि, लव-कुश, लक्ष्मण, बासन्ती, मालती, कौशल्या, वशिष्ठ, सुमंत्र, प्रतिहारी आदि।
दृश्य संख्या	:	छह
प्रदर्शन	:	**रंगमंच** 1. 2 अक्टूबर 1954, बुरहानपुर में बिहार बाढ़ पीड़ितों के सहायतार्थ (बालिका कला मंदिर द्वारा) 2. 4 अक्टूबर 1954, खंडवा में बिहार बाढ़ पीड़ितों के सहायतार्थ (बालिका कला मंदिर द्वारा) 3. 27-28 सितम्बर 1955 खंडवा **आकाशवाणी** 1. 5 सितम्बर 1956 लखनऊ, पटना 2. 27 सितम्बर 1956 नागपुर, जालंधर (सुप्रसिद्ध साहित्यकार/नाटककार श्री उदयशंकर भट्ट ने आकाशवाणी लखनऊ, इलाहाबाद और पटना के लिए संगीत रूपक 'तमसातट' का निर्देशन किया था।)
प्रस्तुति	:	बालिका कला मंदिर द्वारा 11 बार मंचित (खंडवा)

मीरा का विषपान

कृष्ण भक्ति शाखा की प्रमुख कवयित्री एवं भक्त मीराबाई के जीवन से जुड़ी एक सत्य घटना पर आधारित है 'मीरा का विषपान'। लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व राजस्थान के चित्तौड़ में महाराणा सांगा का राज था। मीराबाई, कुँवर भोजराज की पत्नी और महाराणा सांगा की पुत्रवधु थीं।

कहा जाता है कि अड़तालीस वर्षीय मीरा, सोलहवीं शताब्दी के मध्य में, भगवान् कृष्ण की मूर्ति में समा गई थी। विवाह केकुछ ही समय बाद पति राणा भोजराज का स्वर्गवास हो गया था। प्रचलित प्रथा को ठुकराते हुए मीरा ने सती होने से इनकार कर दिया। कृष्ण भक्ति में लवलीन उनका नाचना-गाना राजसी परिवार को रास नहीं आया। गोस्वामी तुलसीदास और सन्त कबीरदास मीराबाई के समकालीन कवि थे।

यहाँ 'मीरा का विषपान' में नाटककार ने शरीरी व अशरीरी प्रेम के बीच की कशमकश को अपनी रचना का केंद्रबिंदु बनाया है। मीरा के प्रभु प्रेम और राणा के देह प्रेम की गुत्थम-गुत्था से बुने ऐतिहासिक कथानक में उन्होंने पात्रों की वैयक्तिक भावनाओं को परखा है। राजसी गृहस्थी की गाड़ी का एक पहिया लिंगन की लिप्सा लिए भौतिक सुख की राह चलना चाहता है जबकि दूसरा अध्यात्म का आनंदानुगामी है। ऐसे में न तो गाड़ी चल पाती है, न दूरियाँ घट पाती हैं। ऐश्वर्य के प्रचुर साधन होते हुए भी कुँवर भोजराज राणा की भोगतृष्णा, अंततः मृगतृष्णा बनकर रह जाती है।

नाटक के अन्तिम दृश्य में, राणा की विक्षिप्तावस्था और मीरा की कृष्णलीनावस्था के बीच, विष प्याले का ऊर्ध्वगमन, नाटक का चरमोत्कर्ष है, जो कि नाटककार की मौलिक सोच को दर्शाता है।

मानव मन में पड़े संस्कारों और विकारों को अनावृत करता नाटक, 'मीरा का विषपान' दर्शनीय तो है ही, पठनीय भी है।

नाटक का सार

चित्तौड़ की राजरानी मीरा के शृंगार कक्ष में कुँवर भोजराज राणा प्रवेश करते हैं। उनका लाया हुआ उपहार पाकर मीरा धन्य हो जाती है। इस बात से राणा बहुत प्रसन्न होते हैं। दूसरे दृश्य में, राजमंदिर में आरती हो रही है। मीरा का मंदिर में प्रवेश होता है। राजरानी को पहली बार आते देख पुजारी आवभगत करता है। मीरा कहती है, ''देवता के मंदिर में स्वागत कैसा ?'' वे चाहती हैं कि बाहर खड़े लोगों को भी अंदर आने दिया जाए। पुजारी, रानी को राजपरिवार के नियमों का हवाला देता है। लौटते वक्त मीरा गिरिधर की मूर्ति अपने साथ ले जाती है। चौथे दृश्य में, मीरा अपने साधना कक्ष में पूजा करती नजर आती है। राणा प्रवेश करते हैं। उनका मन अशांत है। उनके विचार में मीरा पत्थर की मूर्ति में इतनी मगन हो गई है कि पति की सुध खो बैठी है। मीरा क्षमायाचना सहित निवेदन करती है कि राणा ही उसके स्वामी हैं और उसके शरीर पर उनका ही पूर्ण अधिकार है। परंतु राणा को मीरा का निष्प्राण शरीर नहीं चाहिए। मीरा भी विवश है, उसके प्राण तो गिरिधारी के साथ बँधे हुए हैं। भोजराज अपनी रानी मीरा की उदासीनता से आहत हैं। उन्हें इस बात का दुख है कि उनकी धर्मपत्नी, उनके व्यक्तिगत जीवन को तन्हा छोड़कर साधु-संतों की भीड़ में कहीं खो गयी है। वे अपनी सुंदर पत्नी का ध्यान राजसी भोग-विलास की ओर आकर्षित करना चाहते हैं, परंतु मीरा की आसक्ति तो उसके आराध्य गिरिधर में है। समस्या का कोई हल निकलते न देख राणा, राजमहल से मंदिर को हटाने का आदेश देते हैं।

नाटक के दूसरे अंक में मीरा अपने पति को विश्वास दिलाती है कि उसने तन और मन से राणाजी को ही वरण किया है परंतु राणा जानते हैं कि मृगतृष्णा से प्यास शान्त नहीं होती है। क्रोधोन्मत्त राणा मीरा के हाथ से मूर्ति झपट लेते हैं। आश्चर्य

कि मूर्ति आकाश में उड़ जाती है। मंत्री, राजा से निवेदन करता है कि राजमाता देवता की स्थूल मूर्ति से देवत्व तक पहुँच चुकी हैं। परंतु राजा की सोच किसी भी तर्क को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। उन्हें लगता है कि मीरा ने सब पर जादू कर दिया है।

मीरा के यह कहने पर कि, स्वामी शरीर से ऊपर उठकर सोचिए, मैं तो आपसे ही बँधी हूँ, क्रोधान्ध राणा सोचते हैं, जब मैं इस सुंदर शरीर में बँधी मीरा को नहीं पा सका तो इसकी प्राणहीन देह को पाकर क्या करूँगा।... बस आज या तो इसके गिरिधर की इच्छा मुझे समझ में आ जाएगी या मीरा का शरीर ही नहीं रहेगा।... राणा गरजता है, ''मीरा विष का प्याला तैयार है, क्या तुम इसे पी सकोगी ?'' मीरा सहर्ष स्वीकार करती है। पति की इच्छा को गिरिधारी की इच्छा मानकर जैसे ही वह विषपान करने जाती है प्याला उड़ जाता है। भगवान् दर्शनार्थ प्रकट होते हैं। मीरा आत्मसमर्पण करती है। उसके शरीर से ज्योति निकलकर प्रभु में समा जाती है।

मीरा का विषपान

विधा	:	ऐतिहासिक नाटक
अंक	:	दो
दृश्य	:	तेरह
देशकाल	:	सोलहवीं शताब्दी का प्रारंभ
मुख्यपात्र	:	मीरा, कुँवर भोजराज राणा, महाराणा सांगा, पुजारी, रेखा आदि
कथावस्तु	:	मीराबाई के जीवन की एक सत्य घटना पर आधारित
प्रस्तुति	:	बालिका कला मंदिर द्वारा (खंडवा) अनेक बार

मीरा : रेखा, देख मैंने प्रभु चरणों में मेंहदी लगाई ही नहीं। मैं पागल हूँ, मेंहदी तो मैंने अपने पाँव में लगा ली है। क्षमा करना प्रभु, भूल गई थी (देवता के चरण छू कर) पर देखो यह क्या, रास करते-करते प्रभु के चरण फट गये हैं । इन में से तो खून निकल रहा है। अब मैं क्या करूँ ? (साड़ी से पाँव पोछती है)

रेखा : महाराणी जी, प्रभु चरणों में खून नहीं है, यह तो आपने मेंहदी लगा दी है।

मीरा : मेंहदी लगा ली प्रभु, धन्य हो नटवर, मेंहदी लगा ली और बोले भी नहीं। कब से मैं पूछ रही हूँ। रेखा, देख तो कैसे मुस्कुरा रहे हैं, पर काजल तो लगाया ही नहीं। यह क्या, काजल के बदले तो आपने आँखों में अलता लगा दिया। माफ करना प्रभु, आप की आँख दुखती होगी। मैं पौंछ देती हूँ। (पोंछती हैं) धीरे-धीरे पौंछ रही हूँ फिर भी आप हँस रहे हैं, यह भी कोई हँसने की बात है ?

'मीरा का विषपान' से

अछूत कन्या

पौराणिक रामकथा में शबरी का प्रसंग तब आता है, जब सीता हरण के बाद वनवासी राम, सीता की खोज करते हुए पंपा सरोवर के निकट शबरी के आश्रम में पहुँचते हैं। तब तक रामदर्शनाभिलाषी माता शबरी बहुत वृद्ध हो चुकी थी। प्रस्तुत रूपक 'अछूत कन्या' के कथानक में भील कन्या शबरी का ईश्वरोन्मुखी अल्हड़पन है, जो कि राम जन्म से लगभग अर्धशताब्दी पूर्व का प्रसंग है। सात हजार वर्ष पूर्व की एक घटना को आधार बनाकर, छुआछूत और जनजागृति के ताने-बाने से कथानक की कल्पना करना नाटककार की प्रगल्भित प्रौढ़ता का परिचायक है, अभिनंदनीय है। आठ दृश्यों वाले इस रूपक के प्रथम दृश्य में ही 'वाचिक' तथा 'आहार्य' अभिनय से नाटकीयता का आगाज और उद्देश्य का आभास हो जाता है।

निकृत शबरी एक दिन सुकुलों के मंदिर में भगवान की तराशी हुई मूर्ति देख आती है। इससे पहले तो उसने पेड़ के नीचे रंग लगे हुए बड़े से पत्थर वाले वन-देवता को ही देखा था। यहाँ एक अछूत कन्या का बालसुलभ मन, नाटककार के कौशल से मुखरित हो उठता है - ''हमारे भगवान अनगढ़ पत्थर के हैं , और मंदिर में, हाथ-पाँव-मुँह वाले सुंदर हैं। ...हमारे और मंदिर के भगवान अलग-अलग कैसे हुए ?... यदि मंदिर में बैठी मूरत ही भगवान हो सकती है तो मैं भी एक मंदिर बनाकर भगवान् की मूरत रखूँगी और पूछूँगी कि हम अछूत क्यों हैं।''

इस नाटक के माध्यम से पुजारी-ब्राह्मण के बेटे को आदिवासी भीलों की शबरी जाति के हक में खड़ा करके, जातिवादी सामाजिक बुराई के विरुद्ध जनजागृति की मशाल जलाई गई है। पुजारी का बेटा मोहन मानता है कि - ''सब चीजें भगवान ने बनाई है। ...यहाँ कोई छूत-अछूत नहीं है। ...भगवान मंदिर की मूर्ति में नहीं, मन में रहता है। ...सेवक का अर्थ नीच नहीं है। ...ये लोग उच्च वर्ग से भी अधिक पवित्र हैं।

अंतिम दृश्य में मरणासन्न शबरी को दर्शन देते हुए भगवान राम स्वयं कहते हैं - ''उठो शबरी, तुम्हारी साधना पूर्ण हो गई। तुम अमर हो गई। अब इस विश्व में अछूत से कोई घृणा नहीं करेगा। सबका मंदिर, सबका भगवान एक होगा।'' इस प्रकार नाटककार ने प्रसिद्ध पौराणिक चरित्रों को लेकर भक्त शबरी के माध्यम से अस्पृश्यता की सामाजिक समस्या को उठाया और भगवान राम के मुखारविंद से उसका समाधान भी प्रस्तुत कर दिया।

नाटक की कथावस्तु तर्कपूर्ण एवं भावनाप्रधान है।

नाटक का सार

मंदिर में आरती के बाद प्रसाद वितरण हो रहा है। वल्लभराज भील की बेटी शबरी प्रसाद लेने के लिए हाथ बढ़ाती है। पुजारी मंदिर में अछूत कन्या को देखकर आगबबूला हो जाता है। वह लड़की को दुतकार कर भगा देता है। पुत्र मोहन प्रतिकार करता है, पूछता है, ''पिताजी, लड़की को प्रसाद क्यों नहीं दिया ?'' पुजारी समझाता है कि नीच लोग नीच कर्म करते हैं, अतः अछूत हैं। मोहन प्रसाद लेकर शबरी के पास जाता है और उसे सांत्वना देता है कि भगवान् ने सबको समान बनाया है। वह मंदिर में ही नहीं, सबके मन में रहता है। वह शबरी को प्रसाद देता है। शबरी की आस्था और बढ़ जाती है। मोहन आदिवासियों मे विश्वास और जागृति पैदा करता है। भील सरदार, मोहन से बहुत प्रभावित होता है। भील बालाएँ नाचती-गाती प्रकृति का उत्सव मनाती हैं।

गाँव के सुवर्ण लोग मोहन से नाराज हैं। कुलगुरु पुजारी पर दबाव बनाता है। मोहन इस कुप्रथा का विरोध करते हुए बड़ों को समझाने का प्रयास करता है। शबरी भी उपस्थित होती है। पुजारी क्रोध में आकर शबरी पर पूजा की थाल से वार करता है। मोहन बीच में आ जाता है। उसे गहरी चोट लगती है और पिता के हाथों पुत्र का युगांत हो जाता है।

शबरी बड़ी हो गई है। उम्र के साथ प्रभु भक्ति की उसकी लगन भी बढ़ती जाती है। भील सरदार, बेटी के विवाह की तैयारी करता है। बारात भी आ जाती है, तभी शबरी अपने प्रभु की मूर्ति लेकर घर त्याग देती है।

स्वेच्छा से सेवा-स्वच्छता का संकल्प संजोए वनचरी शबरी मतंग ऋषि की कृपापात्र बन जाती है। महाप्रयाण से पूर्व मतंग ऋषि अपना आश्रम शबरी के नाम करते हुए रहस्योद्घाटन करते हैं कि एक दिन त्रिलोकीनाथ भगवान राम स्वयं शबरी से मिलने यहाँ आएँगे।

प्रभु दर्शन की आस लिये शबरी संन्यास-आश्रम अवस्था में पहुँच जाती है। अंततः विष्णुरूप भगवान श्रीराम वनवास के चौदहवें वर्ष के अंतिम चरण में सीता की खोज करते हुए पंपा सरोवर के पास माता शबरी के आश्रम में पहुँचते हैं। दर्शन देकर नवधा भक्ति का मर्म समझाकर परम भक्त शबरी की चिर इच्छा पूरी करते हैं।

अछूत कन्या

विधा	:	रूपक
मूल पात्र	:	शबरी, मोहन, सरदार, पुजारी, कोयलिया, मतंग ऋषि, आदि।
दृश्य	:	आठ
देशकाल	:	सात हजार वर्ष पूर्व त्रेतायुग में (रामजन्म के पचास वर्ष पूर्व से लेकर अड़तीस वर्ष बाद तक)
प्रस्तुति	:	बालिका कला मंदिर द्वारा 16-17 सितम्बर 1964, खंडवा (म.प्र.)

लक्ष्मण : प्राण जब है मूर्ति पूजा नहीं होगी,
राम : कैसा संकट है गुरुदेव....

वशिष्ठ : जनमत तो धर्म के सम्मुख नत होगा।
नीति और न्याय में सब कुछ हत होगा।

लक्ष्मण : दया, माया, मोह, ममता से रहित,
आपका है हृदय केवल न्याय हित,
किन्तु जग के निबल मानव भावमय,
छोड़ देंगे धर्म को होकर सभय।
धर्म मानव से बड़ा क्यों मानते,
प्राण प्रभु हैं यह सभी तो जानते।
तब, प्राण पर पाषाण क्यों पूजित बने,
क्यों मनुजता की लाश पर मंदिर बने ?

'तमसातट' से

आजादी की आग

इस लघु रूपक में, नाटककार ने, आजादी की अलख जगाने वाले प्रारंभिक स्वतंत्रता सेनानियों पर ध्यान केन्द्रित कराकर अपने लेखकीय दायित्व को बखूबी निभाया है।

अंग्रेजों की बदनियती सन् 1757 के पलासी के युद्ध से जाहिर हो चुकी थी। कानून की आड़ और आपस में फूट डालने जैसे लुका-छिपी का उनका खेल लगभग एक शताब्दी तक चलता रहा। उनके जुल्म और दमन से निरीह जनमानस में धीरे-धीरे आक्रोश उभरने लगा जिसे हम ऐतिहासिक गदर की पूर्व पीठिका के रूप में याद करते हैं।

सतीप्रथा कानून, विधवा विवाह कानून, दत्तक अधिकारी कानून, उत्तराधिकारी निरस्तीकरण कानून, गिरजाघरों का निर्माण और ईसाईकरण, हिन्दू धर्म की भावनाओं के विरुद्ध आचरण, दमन की नीति, न्याय का ढोंग और देश की संपदा हड़पने की नीयत जैसी उनकी कुटिल चालों के विरुद्ध लोगों का धैर्य टूटने लगा। दिल में दबी चिनगारियाँ 'आजादी की आग' बनकर मई 1957 में पूरे देश में फैल गई। शुरुआती दौर में मंगल पांडे, नाना धोंडूपंत, तात्या टोपे, रानी लक्ष्मीबाई, बादशाह बहादुर शाह जफर, क्रांतिदूत अझीमुल्ला आदि देशप्रेमी जाँबाजों ने आजादी की मशाल जलाकर अगुआई की और देशहित में कुर्बानी दी।

उत्तरप्रदेश के बलिया का भूमिहर ब्राह्मण मंगल पांडे, ईस्ट इण्डिया कंपनी की चौतीसवीं बंगाल नेटिव इंफेन्ट्री रेजिमेंट में सिपाही था, जिसके नेतृत्व में ब्रिटिश राज के खिलाफ देश में प्रथम सशस्त्र सैनिक क्रांति हुई थी। 29 मार्च 1857 को मंगल पांडे ने रेजिमेंट के एड्जुटेंट, लेफ्टिनेंट बाग और सार्जेन्ट मेजर ह्यूसन को सरे आम ललकार कर तलवार से घायल कर दिया था। सिपाही मंगल पांडे और जमादार ईश्वरी प्रसाद को फाँसी पर लटका दिया गया।

अन्तिम पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहेब धोंडूपन्त की राजकीय दावेदारी को अंग्रेजों ने अमान्य कर दिया और उनकी आठ लाख रुपये सालाना पेंशन भी बन्द कर दी। क्रोधित नाना ने अंग्रेजों के खिलाफ बगावत कर दी। उन्होंने सबको एकजुट किया, अंग्रेजों से कड़ा संघर्ष किया किंतु सती चौरा और बीबी घर के कत्ले आम से दुखी तथा ब्रिटिश हुकूमत के अत्याचार से पस्त होकर राजकर्म छोड़ दिया और नेपाल चले गये। रामचन्द्र पाण्डुरंग (तात्या) टोपे कानपुर के नाना साहेब धोंडूपंत के सेनापति थे। वे सत्तावन की गदर के एक जाँबाज नेता थे। उन्होंने कानपुर में नाना पंत को घेर कर खड़े अंग्रेजों को मजबूर किया कि वे नाना को नेपाल तक सुरक्षित मार्ग दे दें। उन्होंने झाँसी में लक्ष्मीबाई की मदद भी की। समूचे मध्यभारत में आजादी की मशाल जलाते रहे। अंततः अप्रैल 1859 में उन्हे फाँसी दे दी गई।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई भारतवर्ष के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की प्रथम वीरांगना थी। पति, गंगाधर राव की मृत्यु के बाद उनके दत्तक पुत्र दामोदर राव की राज पात्रता को निरस्त करके और रानी को अस्सी हजार रुपये पेंशन देकर अंग्रेजों ने उन्हें झाँसी का किला छोड़ने का आदेश दे दिया। लक्ष्मीबाई ने झाँसी से ग्वालियर तक अंग्रेजों से संघर्ष किया अंततः जून 1858 में वे शहीद हो गईं।

हिन्दुस्तान के अंतिम मुगलिया बादशाह, बहादुरशाह जफर अंग्रेजों की नीतियों के चलते नाममात्र के ही बादशाह रह गए थे। अंग्रेजों के अत्याचार से दुखी होकर उन्होंने ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ देश के राजाओं और आम जनता को एकजुट होने का फरमान जारी करके स्वतन्त्रता संग्राम की मशाल जलाई।

इनके अलावा भी कई अनाम देशभक्तों, शूरवीरों को प्रथम चरण के स्वतन्त्रता सेनानी होने का गौरव प्राप्त है। नाटककार शिवकुमार चवरे ने इनकी पात्रता में, हर हिन्दुस्तानी के दिल में धधकती 'आजादी की आग' को एक लघु नाटक का रूप देकर सच्ची लेखकीय श्रद्धांजलि प्रस्तुत की है। उनका यह प्रयास सदैव स्मरणीय रहेगा।

नाटक की कथावस्तु

बाजीराव पेशवा (द्वितीय) के दत्तक उत्तराधिकारी नाना साहेब धोंडूपंत की दावेदारी अंग्रेजों ने निरस्तीकरण कानून की आड़ में रद्द कर दी और उनके राज्य की आठ लाख रुपये सालाना पेंशन भी बन्द कर दी। अंग्रेजों के बढ़ते अत्याचारों और सुनियोजित हड़प नीति से क्षुब्ध नाना साहेब अपने सेनापति तात्या टोपे और कानूनी सलाहकार काझीमुल्ला से सलाह-मशविरा कर रहे हैं। इसी बीच झाँसी से पैगाम आता है कि लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों का, झाँसी छोड़ने का आदेश ठुकराकर करारा जवाब दे दिया है। लक्ष्मीबाई के बचपन के साथी नाना और टोपे ने उन्हें तुरंत जवाब भेज दिया कि रानी डटी रहें, वे उनके साथ हैं।

राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक इत्यादि क्षेत्रों में मनमाने कानून बनाकर अंग्रेजों ने देश को अपनी गिरफ्त में ले लिया और कानून तोड़ने पर कत्ले आम शुरु कर दिया। परिणामस्वरूप फकीरों, पंडितों और फेरीवालों ने गाँव-गाँव जाकर देशप्रेम और आजादी के लिए जनजागृति की अलख जगानी शुरु कर दी। दिल्ली से मुल्क के सरताज शहंशाह मुगलिया की दरखास्त देश भर में मुनादी की जाने लगी। सरफरोशी की तमन्ना लिये जाँबाज दिल्ली की ओर कूच करने लगे।

अंग्रेजी फौज का हिन्दू सिपाही मंगल पांडे को देश और धर्म जान से भी ज्यादा प्यारा था। सूअर और गाय की चर्बी लगे कारतूसों के इस्तेमाल के खिलाफ नाफरमानी करके और सैनिकों को भड़काकर पांडे ने सैनिक विद्रोह छेड़ दिया।

नाना पंत दिल्ली जाकर बादशाह बहादुरशाह जफर से मुलाकात करते हैं। बादशाह, नाना को पेशवा मान लेते हैं। दोनों देश की दुर्दशा पर चर्चा करते हैं। बादशाह अपनी मजबूरी और बदहाली बयाँ करते हैं। नाना उन्हें भरोसा दिलाते हैं कि वे देश भर के राजाओं को मिलाकर अंग्रेजों से लड़ेंगे। सैनिकों को रोटी और हथियारों के लिए, अंग्रेजों के खजाने लूटने की योजना भी बनाते हैं। बादशाह, नाना साहेब को शीघ्र ही लाल किले में देखना चाहते हैं क्योंकि उन्हें एक बहादुर जनरल की जरूरत है। नाना पंत बादशाह से विदा लेकर झाँसी चले जाते हैं।

घटनाचक्र तेजी से घूमा। देशव्यापी क्रांति से बौखलाए अंग्रेजों ने सख्त कदम उठाए। मंगल पांडे को फाँसी दे दी गई। लोगों में तो अच्छी जागृति और जोश आ गया था किंतु देश का दुर्भाग्य रहा कि कुछ गद्दारों और लालची चाटुकारों ने अंग्रेजों का साथ देकर अपनों को धोखा दिया, देश को कलंकित किया।

नाना साहेब धोंडूपंत, तात्या टोपे के सहयोग से अंग्रेजों की गिरफ्त से बचकर नेपाल चले जाते हैं। रानी लक्ष्मीबाई ग्वालियर के निकट फूलबाग में शहीद हो गईं। तात्या टोपे को भी अंग्रजों ने शिवपुरी में फाँसी पर लटका दिया। दिल्ली पर अंग्रेजों ने कब्जा कर लिया और बादशाह जफर को देश निकाला देकर रंगून भेज दिया। लोगों ने संघर्ष की कीमत चुकाई परंतु हार नहीं मानी। पण्डित, फकीर और जोगी पुनः गाँव-गाँव जाकर देशभक्ति की अलख जगाने में लग जाते हैं।

आजादी की आग

विधा	:	लघु रूपक
कथानक	:	प्रथम गदर की ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित
पात्र	:	नाना साहेब, तात्या टोपे, बहादुर शाह जफर, मंगल पांडे, काजी अझी, अहमदशाह आदि
देशकाल	:	प्रथम क्रांति के दौरान मध्यभारत
प्रस्तुति	:	बालिका कला मंदिर (खंडवा)

टूटा तारा

साहित्य में कुटिलता का कोई स्थान नहीं होता, इसलिए रचना में राजनीति नहीं होनी चाहिए। साहित्यिक चोरी, एक की रचना दूसरे के नाम, रचनाकारों का शोषण और आत्मश्लाघा जैसी साहित्य जगत् से जुड़ी कड़वी सच्चाइयों को नाटककार ने बहुत ही सरलता एवं सहजता से 'टूटा तारा' में प्रस्तुत किया है। सात दृश्यों वाले इस साधारण से नाटक में असाधारण चिंतन झलकता है।

आनंद एक अच्छा तरुण कवि है। वह बेरोजगार है। अपनी बहन के साथ वह किराये के मकान में रहता है। उसकी माली हालत ठीक नहीं है। उसका मित्र प्रकाश, समय-समय पर मदद कर देता है। अखबार में आनंद की कविता दूसरे के नाम से छपती है। इसका दुख आनंद से अधिक प्रकाश को होता है। इससे पहले भी आनंद को अपनी कई रचनाओं का पारिश्रमिक नहीं मिला है। प्रकाश इस शोषण के विरुद्ध आवाज उठाता है। वह संपादक को धमकाता भी है। 'ताजा खून' अखबार के संपादक, बेताल, मामले की गंभीरता को भाँपते हुए हिसाब से कुछ अधिक राशि का चेक आनंद के घर भेज देते हैं। मित्र के जोर देने पर आनंद पारिश्रमिक स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार रोजमर्रा के संघर्ष से गुजरती हुई नाटक की कथा आगे बढ़ती है।

कनक की शुभचिन्तक सहेली राका अपने लिये उसे ट्यूटर नियुक्त करवा लेती है। इसी बीच एक दिन राका के पिता सेठ हीरालाल अपने घर संगीत-काव्य-उत्सव का आयोजन कराते हैं जिसमें अन्य गण्यमान्य लोगों के अलावा आनंद, कनक, प्रकाश और 'ताजा खून' के संपादक भी शराकत करते हैं। महफिल में एक पूँजीपति की बेटी सुधा अपना तथाकथित गीत सुनाकर खूब वाहवाही लूटती है। संपादक बेताल, सुधा के गीत को अपने अखबार में छापने के लिए रख लेते हैं। प्रकाश बीच में उठकर इस साहित्यिक चोरी की ओर सबका ध्यान आकर्षित करता है। वह बताता है कि सुधा जिस गीत को अपना बताकर गा रही है वह वास्तव में आनंद की रचना है।

'टूटा तारा' के माध्यम से नाटककार शिवकुमार चवरे ने नाटक में छोटी-छोटी अवांतर कथाओं की सहायता से साहित्य जगत् में घुस आई कूट-कला को बखूबी उजागर किया है।

टूटा तारा

विधा	:	रूपक
कथावस्तु	:	सामाजिक
मुख्य पात्र	:	आनंद, प्रकाश, कनक, राका, सुधा, सेठ हीरालाल, संपादक-बेताल
प्रस्तुति	:	बालिका कला मंदिर - खंडवा

ज्वाला

नाटक 'ज्वाला' में जातिवाद और सामाजिक कट्टरता की बेड़ियों में दम तोड़ती मानवीय संवेदनाओं के मकड़जाल में उलझे समाज को राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के जीवन-दर्शन से उबारने का विनम्र प्रयास किया गया है। अत्याचारों का बदला क्षमा और दया से हृदय परिवर्तन द्वारा लिया गया है। अन्याय का बदला अन्याय से कभी पूरा नहीं होता। लगातार गिरती बूँदों से गर्म तवे की आतिश भला कब तक टिकेगी । एक पल ऐसा लगता है कि आकाश में प्रचंड बिजली जब चमकती है तो उसके निर्घोष से प्राणी मात्र भयभीत हो उठता है। किंतु दूसरे ही क्षण मेह बरस पड़ते हैं वरदान बनकर, और सारा विश्व जी उठता है। क्षमा और दया से बढ़कर अत्याचार का और अच्छा प्रतिकार क्या हो सकता है। इन्हीं मनोभावनाओं पर, नाटककार ने प्रतिशोध की 'ज्वाला' का कपोलकल्पित कथानक रचा है। इस समस्यामूलक सुखान्त नाटक के छोटे-छोटे ग्यारह दृश्यों में, एक साथ अनेक सामाजिक कुरीतियों पर ध्यान आकर्षित किया गया है। पुरानी पीढ़ी रूढ़िवादी परंपराओं के मोह में जकड़ी हुई है। उनके लिए जात-पात धार्मिक सत्य है। इस पीढ़ी के बुद्धिजीवी लोग भी परंपराओं के आगे विवेकहीन हुए जा रहे हैं । नई पीढ़ी प्रगतिवादी है। वह मानवता और संवेदनाओं के प्रति सजग है और परिवर्तन चाहती है। समाज में वर्ग संघर्ष है, पीढ़ियों में तकरार है और आम जनता भेड़ चाल के लिए तत्पर है। जागरूक नाटककार शिवकुमार चवरे ने तत्कालीन समस्याओं से जूझते समाज को नाटक के रूप में आईना दिखाया है और समाधान भी सुझाया है।

कथानक

सीमा पार गाँव में वर्ग संघर्ष से पीड़ित लड़की सोना, इस पार के गाँव में घुस आती है। उसकी आँखों के सामने कत्लेआम हुआ है जिसमें उसके अपने भी थे। वह अत्यधिक भयभीत है और उसके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही है। नौजवान दीपक और उसके परिजन लड़की की सहायता के लिए आगे आते हैं। पंडित पलटूराम शास्त्री की अगुआई में गाँव वाले विरोध करते हैं। सोना सांत्वना नहीं प्रतिशोध चाहती है। धीरे-धीरे इस गाँव के लोग भी भड़क जाते हैं। सीमा पार की आग इधर भी फैल जाती है। शास्त्री के उकसाने पर सवर्ण लोग अपने ही गाँव के निरीह विधर्मियों पर टूट पड़ते हैं। दीपक स्थिति को काबू में लाने के लिए भरसक प्रयत्न करता है। वह घायल भी हो जाता है। गाँव का मुखिया दीपक का साथ देता है। प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद दीपक की कोशिश रंग लाती है। सोना अंततः मान जाती है। प्रतिशोध का खयाल छोड़कर अत्याचारियों को रोकती है। मुखिया की लड़की के साथ शास्त्री की लड़की भी पीड़ितों की सेवा सुश्रुषा में लग जाती है। शास्त्री की बड़ी किरकिरी होती है। दीपक और मुखिया के प्रयत्नों से स्थिति सामान्य हो जाती है। मुखिया सवर्ण आततायियों को गाँव की शांति भंग करने की सजा सुनाता है कि वे लोग मिलकर विधर्मियों के नुकसान की भरपाई करें। पलटूराम शास्त्री को जनपद से बाहर निकाल दिया जाता है। इस प्रकार नई पीढ़ी की पहल से गाँव में परिवर्तन आ जाता है।

ज्वाला

विधा	:	नाटक
दृश्य	:	ग्यारह
कथानक	:	सामाजिक
मुख्य पात्र	:	पलटूराम शास्त्री, दीपक, गाँव का मुखिया, सोना
लेखन वर्ष	:	1950
प्रस्तुति	:	बालिका कला मंदिर, खंडवा

बालिका कला मंदिर द्वारा आसाम भूकम्प पीड़ितो के सहायतार्थ 'ज्वाला' नाटक (1950)

बायें से कुर्सी पर बैठे हुए - श्री कुंजबिहारीलाल सरमंडल, श्री बाबूलाल मारकंडे, श्री सोहनलाल गुप्ता (वकील), जिलाधीश चौधरी सा., श्री अनोखीलाल अरझरे, श्री शिवकुमार चवरे, श्री मूलचंद शर्मा (प्रथम पंक्ति में खड़े हुए) उषा उपाध्याय, जीवन सराफ, शीलवती सरमंडल, चंद्रकला श्रीमाली, सुमन मेहता, कुसुम पहारे, शीला पगारे (द्वितीय पंक्ति में खड़े हुए) पद्मा पगारे, सुनीता शुक्ला, अलकनंदा शास्त्री, साधना गुप्ता, उर्वशी सोहनी, करुणा उपाध्याय (अंतिम पंक्ति में खड़े हुए) अब्बास भाई, नारायणदास भाई, विष्णु शर्मा शास्त्री, रामराव चवरे, श्री हिरानीया, छोटेलाल दफ्तरी, गोविंद शुक्ल

स्वर्णरेखा

मध्यप्रदेश में मन्दसौर का सौंधनी विजय स्तम्भ इस बात का प्रमाण है कि छठी शताब्दी के प्रारंभ में मालव नरेश यशोधर्मन ने खानाबदोश हूण आततायियों को खदेड़कर मालव गणराज्य की रक्षा की थी। इस ऐतिहासिक घटना की भूमिका पर नाटककार शिवकुमार चवरे ने लिप्साजन्य बाह्य सौंदर्य के परिप्रेक्ष्य में आंतरिक सत्य के सौन्दर्य को निरूपित किया है। रूपक, घटना प्रधान है और दर्शकों को बाँधे रखने में सक्षम है। इसके कलेवर को दो अंकों के अंतर्गत चौदह दृश्यों में विस्तारित किया गया है।

कला, सौन्दर्य, लिप्सा और अंतश् चेतना की चतुष्कोणी पटकथा पर आधारित यह शानदार नाटक लेखक की प्रतिभा का परिचायक है। यह रूपक विश्व की सर्वोत्तम कृति, 'मानव' की अंतर्ध्वनि है।

कथासार

पूर्णिमा की रात्रि में मालव राजकुमारी स्वर्णरेखा नौका विहार कर रही है। वहीं राजप्रासाद पर उज्जयिनी के चित्रकार नीहार से उसकी भेंट होती है। चित्रकार अपना परिचय देकर पूछता है कि, ''तुम कौन हो जिसने मेरे अंतर को छूकर एक चेतना जगा दी है?'' राजकुमारी प्रसन्न है कि पहली बार किसी ने उसके शरीर के सौंदर्य के बजाय आन्तरिक सौंदर्य की प्रशंसा की है। चित्रकार महाकाल मंदिर के पीछे उपवन में रहता है। राजकुमारी अपना चित्र बनवाने की इच्छा प्रकट करती है। चित्रकार भी विश्व के उस अनंत सौंदर्य का अभिरूप आलेख बनाने के लिए रोमांचित हो उठता है।

आततायी हूण राजा रुद्रसेन मालव राज्य की राजकुमारी को रूपलिप्सा के वशीभूत होकर हथियाना चाहता है। वह मालव नरेश यशोधर्मन को संदेश भेजता है कि वे या तो राजकुमारी उसके हवाले कर दे या युद्ध की चुनौती स्वीकार करे। क्रोधित एवं व्यथित राजा यशोधर्मन अपने महामंत्री तथा सेनापति से मंत्रणा करके राज्य की प्रतिष्ठा के लिए युद्ध की चुनौती को स्वीकार करते हैं। राज्य में घोषणा कर दी जाती है कि नागरिक सावधान रहें।

हूणराज की बदनीयती और मालव पर गहराते संकट से बेखबर राजकुमारी अपने कक्ष के गवाक्ष से उषा की मादक आभा निहार रही है। वह रंगों से परे सौन्दर्य–सत्य को परखने वाले चित्रकार के खयालों में खोई हुई है। क्या उषा के डग अरुण बाँध पाया है? आकुलित राजकुमारी कलाकार से मिलने का मन बनाती है। तभी उसे सूचना मिलती है कि राज्य में युद्ध की स्थिति बन रही है।

चित्रकार नीहार की कुटिया में राजकुमारी स्वर्णरेखा प्रवेश करती है। अकिंचन के आगर में अप्रतिम सौन्दर्य की संपदा। स्वर्णरेखा कुटिया में लगी चित्रशाला देखकर मुग्ध हो जाती है। कलाकार चित्र बनाना आरंभ करता है। राजकुमारी का रूप, चित्रकार की कला में साकार होना चाहता है। रंग और तूलिका के व्यवधान के बिना क्या चित्र नहीं बन सकता! शायद बन सकता है, परंतु वह चित्र एक व्यक्ति की आत्मतृप्ति भर होगा, जबकि चित्रकार ऐसा अमर चित्र बनाना चाहता है जो संपूर्ण विश्व की निधि हो। अनुरक्त राजकुमारी कलाकार को सचेत करती है कि विश्व भर में प्रशंसा पाने वाला चित्र बनाकर उसे क्या प्राप्त होगा। यदि साधना को ही साकार करना है तो कलाकार को प्राणों से प्राणों का स्पर्श करना चाहिए। सजीव मूरत को रेखाओं की अपेक्षा जीवन के बन्धन में बाँधना चाहिए। राजकुमारी से संकेत पाकर चित्रकार प्राणों के बन्धन में बँधने के लिए तत्पर हो जाता है। रंग और रूप एक दूसरे को थाम लेते हैं। कला और कामिनी के बीच स्पर्श का प्रक्रम प्रगम से प्रगाढ़ होने लगता है। तभी द्वार पर दस्तक होती है। राजकुमारी की भयभीत सखी, किरण, सूचना देती है कि राजकुमारी स्वर्णरेखा का अपहरण करने के लिए हूण सैनिक नगर में प्रवेश कर चुके हैं अतः उसे शीघ्र ही गुप्त आश्रय ले लेना चाहिए।

राजकुमारी जाने लगती है। चित्रकार उद्विग्न है कि उसका चित्र तो अधूरा ही रह गया। स्वर्णरेखा जाते-जाते आश्वासन दे जाती है - ''चित्रकार अपने अंतर के चित्र को धुँधला मत होने देना। अधूरा चित्र अवश्य पूरा होगा। राजकुमारी हमेशा तुम्हारे सम्मुख रहेगी।''

महाकाल के मंदिर के पीछे, रात के अँधेरे में किरण को चोट पहुँचाकर, हूण गुप्तचर राजकुमारी का अपहरण कर लेते हैं। चेतना लौटने पर किरण महल पहुँचकर महाराज यशोधर्मन को अपहरण की जानकारी देती है।

मालव नरेश सेना नायक को अविलंब रणभेरी फूँकने और हूणं सैनिकों को कुचलने का आदेश देते हैं। कंदुक तत्काल प्रवेश करके निवेदन करता है कि महाराज शांति से विचार करें। ऐसी स्थिति में युद्ध की अपेक्षा कूटनीति से काम लेना चाहिए। आततायी अपहरण करके भाग चुके हैं, उनका उद्देश्य युद्ध नहीं था। उनकी सेना भी विशाल है। जल्दबाजी में हालात बिगड़ सकते हैं। महाराज गुप्तचर कंदुक की बात मान लेते हैं।

लिप्सा को कला से मात देने की रणनीति बनाकर कंदुक चित्रकार से मिलता है। उसे बताता है कि मालव की मर्यादा और सौंदर्य हूणों का बंदी हो चुका है। साधना कल्पना से नहीं त्याग से पूर्ण होती है। कला में प्राण लाने के लिए प्राणों का उत्सर्ग चाहिए। चित्रकार ! तुम्हारा चित्र अवश्य पूरा होगा और हमारा प्रतिशोध भी। चित्रकार देश धर्म हित सहर्ष तैयार हो जाता है।

दूसरे अंक में - मालव गुप्तचर कंदुक, चित्रकार नीहार और राजकुमारी की अंतरंग सखी किरण, हूण राज्य की सीमा में प्रवेश करते हैं। कंदुक ज्योतिषी का छद्मवेश धारण करता है और किरण अनाथ बालिका का, जबकि नीहार चित्रकार ही बना रहता है।

हूणराज के महल में राजकुमारी स्वर्णरेखा को नई महारानी बनाकर रखा गया है। वह उदास है। दासियाँ उसे खुश रखने की नाकाम कोशिशें करती हैं। इसी बीच अनाथ बाला के वेश में किरण गीत गाकर मन बहलाने के बहाने राजकुमारी के कक्ष में प्रवेश पा लेती है, और मौका पाते ही दोनों सखियाँ चर्चा करती हैं।

ज्योतिषी बना कंदुक यह बात फैला देता है कि मालव की राजकुमारी, अपहरण करके कुशनगर के राजमहल में रखी गई है परिणामस्वरूप राज्य में घोर विपदा आने वाली है। अनाथ बाला से राजमहल की गायिका बनी किरण धीरे-धीरे राजमहल के लोगों को विश्वास में ले लेती है। यहाँ तक कि राजा भी गायिका किरण की सलाह मानने लगते हैं। राजकुमारी को प्रसन्न करने के लिए किरण की सलाह पर राजा उसका चित्र बनवाने के लिए चित्रकारों को आमंत्रित करता है।

राजघोषणा के परिणामस्वरूप बहुत से चित्रकार आते हैं। मगध और गांधार से भी चित्रकार आकर प्रयत्न करते हैं परंतु राजकुमारी का आकर्षक चित्र बनाने में नाकाम रहते हैं।

मालव के गुप्तचर कंदुक की योजनानुसार उज्जयिनी का चित्रकार नीहार राजमहल की ओर कूच करता है। वह कुशनगर के राजा से भेंट कर राजकुमारी स्वर्णरेखा का चित्र बनाता है। बेताब हूणराज चित्र देखकर क्रोधित होता है क्योंकि चित्र में शरीर का सौंदर्य तो झलकता है परंतु दृष्टि में मादकता नहीं दिखाई देती। कलाकार तर्क देता है कि उसने तो यथार्थ को ही चित्रित किया है। अंतर के सत्य को छिपाने के लिए किसी मनोरम शृंगार के आवरण से चित्र को सुसज्जित नहीं किया है। कलाकार राजा को यह भी बताता है कि राजकुमारी के रोम-रोम में प्रतिशोध है। उसके प्राण किसी और को पाने के लिए व्याकुल लगते हैं। एक तरह से वह राजा को संकेत देता है कि बंदी बनाकर किसी के प्राण नहीं बाँधे जा सकते। हूण राजा आगबबूला होकर महामंत्री को आदेश देता है कि चित्रकार का सिर काट दिया जाए। तत्क्षण कंदुक प्रजाजनों के साथ प्रवेश करता है। साथ ही सूचना मिलती है कि मालव की सेना कुशनगर में घुस आई है। राजमहल घिर चुका है और सेनापति मारा गया है। इससे पहले कि किंकर्तव्यविमूढ़ राजा कुछ समझ पाए मालव सैनिक आकर कंदुक के इशारे पर हूणराज को बन्दी बना लेते हैं।

मालव का प्रतिशोध पूरा हो जाता है परंतु राजकुमारी को गंभीर चोट आ जाती है। चित्रकार की गोद में राजकुमारी का सिर रखा है। राजकुमारी चित्रकार का धन्यवाद करती है। चित्रकार की तूलिका में प्राण लौट आते हैं। सौंदर्य ने सत्य को पा लिया है। अब उसे शरीर के बंधन की आवश्यकता नहीं है। जिसके रूप के आकर्षण से मानव विवेक खो दे, जिसकी मादकता से जीवन जल उठे, लिप्सा जाग उठे। ऐसी काया का क्या मूल्य। राजकुमारी चित्रकार को अंतिम शब्द कहती है - ''मैंने प्रियतम पा लिया है। तुम अपने अंतर के चित्र को धुँधला मत होने देना। मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ....।''

हूणराज की लिप्सा ने विश्वनिधि से एक अमूल्य रत्न छीन लिया। उसके वीरत्व को कलंक लग गया। आत्मग्लानि और पश्चाताप से भरे हूणराज ने अपने आप को मालव सेना के हवाले कर दिया परंतु चित्रकार के निवेदन पर दंडस्वरूप हूणराज को बंधनमुक्त करके उसका राज्य लौटा दिया जाता है।

चित्रकार जनपद छोड़कर एकांतवास में चला जाता है। बाद में पता चलता है कि वही चित्रकार उदयगिरि (विदिशा) की गुफाओं में कई वर्षों तक साधना करते हुए अपनी कला को अमर कर गया।

स्वर्णरेखा

विधा	:	नाटक
कथा	:	ऐतिहासिक
पात्र	:	मालव नरेश यशोधर्मन, राजकुमारी स्वर्णरेखा, चित्रकार नीहार, कन्दुक, किरण, हूणराज रुद्रसेन
देशकाल	:	छठी शताब्दी में मालव गणराज्य
प्रस्तुति	:	बालिका कला मंदिर, खंडवा

स्वर्णरेखा : कला को विश्व में बिखेरने से पहले अपने आप में संयत करो। जिस मूर्ति को रेखाओं के नश्वर बंधन में बाँध कर पार्थिव रूप देना चाहते हो, उसे प्राणों से सजीव बंधन में बाँधो। वह हमारे रक्त के स्पंदन के साथ उंगलियों के कंपन में बाहर निकले, पुतलियों में तैरते रंगों में छन कर पार्थिव रंगों में उतरे, उस दिन पूर्ण होगी तुम्हारी कला, अक्षुण्ण होगी तुम्हारी कीर्ति।

चित्रकार : तुम धन्य हो राजकुमारी, आज तुमने मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया।

'स्वर्णरेखा' से

यशोधरा

सिद्धार्थ गौतम को गौतम बुद्ध बनाने के लिए किया गया यशोधरा का महात्याग आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व की एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना है। राजा सुप्पबुद्ध और रानी पमिता की षोड़शी पुत्री यशोधरा का विवाह उसके मामा राजा शुद्धोधन के पुत्र सिद्धार्थ से हुआ था। पहले पति और फिर पुत्र से, मानव कल्याण हेतु बिछुड़ने के बाद, स्वयं यशोधरा ने भी संन्यास-धर्म अपनाकर, गौतम बुद्ध के निर्वाण से पहले, अठहत्तर वर्ष की आयु में देह त्याग दी।

राजकुमारी से संन्यासिनी बनी यशोधरा की पारंपरिक कथा समष्टिगत कल्याण हेतु व्यष्टिगत त्यजन की बेमिसाल मिसाल है। इस प्रकरण पर मैथिलीशरण गुप्त ने विरह केंद्रित महाकाव्य रच डाला है। नाटककार शिवकुमार चवरे ने इसके कथानक को मानवीय संवेदनाओं के इर्द-गिर्द गुथा है। उन्होंने राजसी योग और पारिवारिक माया-मोह के द्वंद्व से उबारकर सिद्धार्थ को बोधिसत्व बना दिया।

छोटे-छोटे नौ दृश्यों वाला यह रूपक संवाद प्रधान है। यशोधरा और सिद्धार्थ के सटीक एवं संक्षिप्त संवादों के माध्यम से जीवन का दर्शन मुखरित हुआ है। सिद्धार्थ के लिए, क्षण अस्थिर है। उनकी गति शाश्वत है। गति को पकड़ना ही आनंद है। जबकि यशोधरा के लिए, ''सत्य ही, सौभाग्य अमूल्य है।... इस सौभाग्य का कठिन मूल्य चुकाना होगा।'' वैभव और सुख के लिए महाराज शुद्धोधन ने कुमार के पीछे एक छंदक को परछाई सा लगा दिया था परंतु... ''वे इतने महान् हैं कि परछाई को भी छोड़ देते हैं।'' नाटक के संवाद ध्वनित करते हैं कि नारी कभी भी पुरुष की कमजोरी नहीं रही वह तो सुधी पुरुषों के महान कार्यों के पीछे त्याग और शक्ति की अधिष्ठात्री बनी है। लोक कल्याण के लिए यशोधरा की नारी ने अपने सुख, सुहाग, संतान सहित स्वयं का भी उत्सर्ग किया है।

नाटककार ने ऐतिहासिक कथानक की गरिमा को बरकरार रखते हुए पात्रों की मनोदशाओं का न्यायोचित प्रकाशन किया है।

नाटक का सार

कपिलवस्तु के राजप्रासाद के उद्यान में यशोधरा प्रतीक्षारत है। राजकुमार सिद्धार्थ पधारते हैं। उनकी उद्विग्नता को यशोधरा भाँप लेती है। वह कुमार के विचलित मन को पुण्य संचित जन्म-जन्मान्तर के स्नेह सौन्दर्य की ओर स्थिर करने का प्रयत्न करती है। सिद्धार्थ के मन में छटपटाहट है। उन्हें गंतव्य का आभास हो चुका है परंतु राहें उन्हें उलझा रही हैं। गूढ़ विषय की गंभीरता से दर्शक/पाठक को निजात दिलाने के लिए नाटककार ने दूसरे दृश्य में चित्रकार और छंदक का मनोरंजक प्रसंग भी रखा है।

यशोधरा समझ चुकी है कि शान्त गंभीर, भरे मेघ के समान सिद्धार्थ के हृदय में विद्युत की ज्वाला गुपचुप धधक रही है। धीरे-धीरे सिद्धार्थ समझने लगे हैं कि देह से बँधा मानव शांति कैसे पा सकता है। यही तो वे खोजना चाहते हैं। यहाँ वानप्रस्थ से पूर्व सिद्धार्थ की मनस्थिति का विवेकपूर्ण विश्लेषण हुआ है। सिद्धार्थ, यशोधरा से - ''तुमने मुझे बाँध रखा है।... छोड़ दो देवि! मुझे छोड़ दो।'' यशोधरा - ''आपको बाँध रखने का बल कहाँ है देव!'' अशांति, अतृप्ति और लालसा के अपने ही जाल में उलझकर मनुष्य दुखी होता है। सत्य को छिपाने की नाकाम कोशिश करता है। कैसी आत्मवंचना है। उसे मार्गदर्शन चाहिए।

छठे दृश्य में महाराज शुद्धोधन को अमात्य बताता है कि कुमार ने राजसी वस्त्र, सुंदर केश और गृहस्थ जीवन का त्याग कर दिया है।

बारह वर्ष पश्चात् सिद्धार्थ से बुद्ध बने तथागत लौटते हैं । विरह, तप और त्याग की मूर्ति यशोधरा अपने एकमात्र पुत्र को तथागत के चरणों में अर्पित करते हुए अपने दायित्व तथा मोह-माया से मुक्त हो जाती है। साथ ही गौतम बुद्ध के आह्वान पर लोककल्याण के लिए प्रवज्या लेकर बौद्ध-भिक्षुणी बन जाती है।

यशोधरा

विधा	:	लघु रूपक
कथावस्तु	:	ऐतिहासिक
देशकाल	:	साढ़े पाँच सौ वर्ष ई.पू.
मुख्य पात्र	:	यशोधरा, सिद्धार्थ, महाराज शुद्धोधन, छंदक, राहुल, चित्रकार
दृश्य संख्या	:	नौ
प्रस्तुति	:	बालिका कला मंदिर, खंडवा

सिद्धार्थ : देवी यशोधरा ! मैं तुम्हारे कोमल हृदय और पवित्र प्रेम को छोड़ कर जा रहा हूँ। लोककल्याण की भावना आज तुम्हारे सुख और सुहाग का बलिदान माँग रही है, वह तुम्हें देना होगा। मैं चला देवी, क्षमा करना। एक दिन तुम्हारी अतृप्त आत्मा को शांति का संदेश सुनाने अवश्य आऊँगा। मैं शाश्वत एकरूपता को ढूँढना चाहता हूँ। भोग का बलिदान और साधना की आगम में तप कर ही वह एकरूपता प्राप्त होगी। तुम साधना करो देवी। मैं शांति पा सका तो तुम्हें उसका संदेश देने आऊँगा। उस दिन तक तुम मेरी मार्ग प्रतीक्षा करना।

'यशोधरा' से

पेटतंत्र

पेटतंत्र, नाटककार शिवकुमार चवरे की सर्वकालिक सटीक हास्य-व्यंग्य एकांकी रचना है। लेखन के पचास साल बाद भी यह दृश्य प्रस्तुति प्रासंगिक है। यह रूपक दर्शकों को जितना गुदगुदाता है, उतना ही झँझोड़ता भी है। हर युग में शासन तन्त्र मानव समाज को गहराई से प्रभावित करता आया है। रूपक में जहाँ पेटतंत्र पर स्वार्थी शासन तंत्र के, मनसाराम पर मंत्री के तथा शरीर के अंगों पर चापलूस सभासदों के आरोपण से स्वाभाविक हास्य की सर्जना होती है, वहीं देश की व्यंग शासन प्रणाली पर करारे व्यंग्य की प्रस्तुति भी देखते ही बनती है।

अति सर्वत्र वर्जित होती है। पेटतंत्र के सभासद पात्र जब चाटुकारिता की सीमा लाँघकर परेशान हो जाते हैं तो अपने नाखूनों से अपनी खोपड़ी स्वयं नोचने लगते हैं। उनींदे तंत्र को झकझोरने के लिए, हड़ताल नागरिकों का एक वैधानिक हथियार है जिसे नेता लोग हथियार बनाकर अपनी ही बिरादरी से विरोध जताते हैं और जनता को गुमराह करते हैं। अच्छी सलाह (बुद्धि) को दरकिनार कर देते हैं। ये लोग स्वार्थवश विरोधियों से भी मिलकर एक हो जाते हैं। पेटतंत्र के कथानक का यही आधार है। सुधी नाटककार शिवकुमार चवरे के रचना संसार की यह सर्वश्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कृति है।

कथातत्व

महाराज पेटदेव का दरबार लगा हुआ है। मंत्री मनसाराम देहपुरी के नागरिकों और सभासदों के समक्ष पेटदेव की गौरवगाथा का बखान कर रहे हैं। उनके अनुसार कई राजे-रजवाड़े आए और चले गये परंतु जबसे ईश्वर ने दुनिया बनाई है तब से अब तक समस्त प्राणियों में महाराज पेटदेव का एकछत्र राज बरकरार है। सभासद बने पेटदेव के विभिन्न अंग पेटदेव की चापलूसी में लगे हुए हैं। हर कोई यह जताने का प्रयत्न कर रहा है कि वही सच्चा सेवक है। इस प्रकार के दूषित होते वातावरण को देखकर बुद्धि पेटतंत्र की सीमा से बाहर चली जाती है।

कुछ ही समय में, बुद्धि के अभाव में, अपनी चाटुपटुता और अराजकता के जाल में सभासद उलझकर परेशान हो जाते हैं। फिर वे अपने ही तंत्र के विरुद्ध हड़ताल पर उतर आते हैं। मंत्री मनसाराम पेटदेव को तब भी उलटी सीधी जानकारी देने से बाज नहीं आते। हारकर पेटदेव मंत्री मनसाराम को लथाड़ते हैं और ऐसे कठिन समय में संकटमोचिनी बुद्धि को याद करते हैं। बुद्धि उपस्थित होकर पेटतन्त्र और सभासदों के बीच सुलह समझौते का वातावरण निर्मित करती है।पेटदेव स्वीकार करते हैं कि राज्य, कुटिल राजनीति, आतंक और अत्याचार के बल पर नहीं चल सकता। वही राज्य सफल हो सकता है जिसके शासक प्रजाहित में आपसी सलाह और सहयोग से काम करें।

पेटतंत्र

विधा	:	एकांकी (हास्य-व्यंग्य)
कथानक	:	काल्पनिक
पात्र	:	पेटदेव, मनसाराम, कर्तारसिंह, चरणदास, हाथ, मुँह, नाक, कान, आँख और बुद्धि
मंचन	:	खंडवा

आजादी की दीवानी

साहस एवं सौंदर्य की बेमिसाल मिसाल झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की स्त्री चेतना शक्ति पर केंद्रित है, ऐतिहासिक नाटक 'आजादी की दीवानी'। इसके कथानक की भूमिका जानने के लिए आइए इतिहास के पन्ने पलटते हैं।

सन् 1835 में, काशी नगरी में जन्मी वरांगना मनकर्णिका मारोपंत ताम्बे, उर्फ मनु, उर्फ छबीली, प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की प्रथम वीरांगना, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के नाम से विश्व इतिहास में प्रसिद्ध हुई है। मनु का विवाह झाँसी के राजा गंगाधर राव नेवलकर से हुआ। सोलह वर्ष की उम्र में रानी ने पुत्र दामोदर राव को जन्म दिया जो कि चार माह की अल्पायु में ही चल बसा। राजा गंभीर रूप से बीमार हो गये। उन्होंने मृत्यु से पूर्व अपने रिश्तेदार के पुत्र आनंदराव को गोद लेकर उसका नामकरण भी दामोदर राव ही कर दिया। लक्ष्मीबाई अठारह वर्ष की उम्र में विधवा हो गईं। उन्हीं दिनों अंग्रेजों की बदनियती और दमनकारी नीतियों के विरोध में, देश भर में क्रांति की लहर फैल चुकी थी।

ब्रिटिश इंडिया के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी ने एक कानून बनाकर निसंतान राजाओं के राज्यों को हड़पकर ईस्ट इण्डिया कंपनी की जागीर में मिलाने का आदेश जारी कर दिया। इसी नियम के तहत महाराज गंगाधर राव के दत्तक पुत्र दामोदर राव के उत्तराधिकार को खारिज करते हुए अंग्रेजों ने रानी लक्ष्मीबाई को साठ हजार रुपये पेंशन की पेशकर की और झाँसी का राज्य छोड़ने का फरमान जारी कर दिया। रानी लक्ष्मीबाई ने प्रस्ताव ठुकराते हुए कहा, ''मैं अपनी झाँसी किसी कीमत पर नहीं दूँगी।'' जनरल (तब मेजर) सर ह्यू रोज के नेतृत्व में बीस हजार सैनिकों की सेना ने झाँसी पर आक्रमण कर दिया। भीषण युद्ध हुआ। झाँसी का किला चारों ओर से घेर लिया गया। अंग्रेज लड़ाकों को चकमा देते हुए, दामोदर को लेकर रानी कालपी चली गई। फिर उन्होंने अंग्रेजों के हितैषी सिन्धिया को खदेड़कर ग्वालियर से अपना संघर्ष जारी रखा। झाँसी पर कब्जा करने के बाद ह्यू रोज की सेना ने ग्वालियर पर धावा बोल दिया। दो दिनों तक घमासान युद्ध होता रहा। रानी किले से बाहर मैदान में आना चाहती थी। घोड़ा नया था। किले की दीवार से कूदते वक्त घोड़ा खाई लाँघ नहीं सका। घायल वीरांगना दोनों हाथों में तलवार लिए बहादुरी से लड़ते हुए 18 जून 1858 के दिन ग्वालियर के निकट फूलबाग क्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हो गई। मातृभूमि की अस्मिता की रक्षा के लिए विशाल अंग्रेजी सेना से लोहा लेने वाली झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की उम्र उस वक्त तेईस वर्ष से भी कम थी।

इस ऐतिहासिक घटना पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। प्रस्तुत लघु रूपक 'आजादी की दीवानी' में नाटककार शिवकुमार चवरे ने झाँसी के युद्ध की तैयारी पर ध्यान केंद्रित करते हुए, नारी संगठन, नारी जागरण एवं नारी शक्ति की अपनी विचारधारा को ही पल्लवित किया है। कोमल शरीर में छिपी वज्र शक्ति को पहचान कर लक्ष्मीबाई ने महिलाओं की फौज तैयार की और उसे ब्रिटिश आततायी सेना के टक्कर में खड़ा कर दिया। यह सब उन्होंने उस जमाने में कर दिखाया जब भारत के पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं की दुनिया देहरी से अटी और घूँघट से पटी रहती थी।

नारी चेतना के पक्षधर नाटककार शिवकुमार चवरे को अपने नाटक के कथानक के लिए इससे अच्छी पृष्ठभूमि शायद ही कहीं और मिल पाती।

कथासार

झाँसी की रानी का दरबार लगा हुआ है। हाल ही में हुई महाराज की मृत्यु से सभा में उदासी छाई हुई है। राज्य पर युद्ध के बादल छाये हुए हैं। इसी बीच कंपनी सरकार का फरमान आता है, 'चूंकि राजा का कोई अपना उत्तराधिकारी नहीं है और रानी को दत्तक लेने का कोई हक नहीं है, इसलिए कंपनी सरकार झाँसी राज्य को 'खालसा' करती है (अपने ब्रिटिश राज की

जागीर मानती है)।' सभी जानते हैं कि अंग्रेजों ने ऐसे कानूनों की आड़ में कई राज्यों को हड़प लिया। क्रोधित रानी घोषणा करती है कि, ''मैं अपनी आजादी, अपनी झाँसी, किसी कीमत पर नहीं दूँगी और अंतिम साँस तक लड़ती रहूँगी।'' नाना साहेब के पास दूत भेजकर तात्या को भी शीघ्र झाँसी बुलाया जाता है। तात्या आकर बताते हैं कि अंग्रेजों की चालबाजियों से देश भर में विद्रोह की आग भड़क उठी है। रानी और तात्या आगे की योजना बनाते हैं। रानी महिलाओं की सेना का गठन करती है। इसकी नायिका काशीबाई और सहायिका मंदरा रहती है। रानी के आह्वान से महिलाओं में जागृति आ जाती है। वे राज्य की रक्षा के लिए कमर कस लेती हैं। लक्ष्मीबाई की देखरेख में काशी और मंदरा महिलाओं को तलवारबाजी, घुड़सवारी आदि युद्धकला के अभ्यास करातीं हैं।

अंग्रेजों की छावनी में झाँसी के विरुद्ध षड़यन्त्र रचा जा रहा है। मेजर सर ह्यू रोज, उम्मेदसिंह को गुप्तचर बनाकर झाँसी भेजता है। इसके बाद पूरी तैयारी के साथ ह्यू रोज झाँसी की ओर कूच करता है।

तात्या टोपे मेजर ह्यू रोज की विशाल सेना को झाँसी के बाहर ही पीछे ढकेलते हुए ग्वालियर लौट जाता है। शायद यह अंग्रेजों की चाल थी क्योंकि तात्या के जाते ही वे पुनः झाँसी की ओर बढ़ते हैं और गुप्त सूचना के आधार पर किले की कमजोर दीवार को तोड़कर तोपों से भारी तबाही मचाते हैं। घमासान युद्ध के बीच महिला सेना की नायिका काशीबाई और मंदरा शहीद हो जाती हैं। स्थिति को भाँपते हुए रानी लक्ष्मीबाई किला छोड़कर मैदान में उतर आती है, और बहादुरी से लड़ते हुए घायल हो जाती है। तभी तात्या आ जाते हैं। रानी तात्या को अपनी इच्छा बताती है। वह कहती है कि मेरे मृत शरीर को फिरंगियों के अपवित्र हाथ न लगें इसका ध्यान रखना। अंग्रेजों से अपनी आन के लिए आखिरी दम तक लड़ते हुए 'आजादी की दीवानी' झाँसी की रानी, लक्ष्मीबाई अमर हो गई।

आजादी की दीवानी

कथानक	:	ऐतिहासिक
विधा	:	लघु रूपक
देशकाल	:	गदर के दौरान 1858 में, झाँसी-ग्वालियर राज्य
पात्र	:	रानी लक्ष्मीबाई, तात्या, काशी, मंदरा, मेजर ह्यू रोज, आदि
मंचन	:	खंडवा

माँ-भारती

इस स्त्री पात्र प्रधान प्रकरणी (नाटिका) में नाटककार ने देश में व्याप्त छोटी-छोटी सामाजिक बुराइयों को लक्षित किया है। ये कुरीतियाँ भले ही छोटी-छोटी हों परंतु इनके दूरगामी परिणाम सभ्य समाज के विकास में बड़ी-बड़ी बाधाएँ खड़ी कर देते हैं।

प्रायः सामाजिक कुरीतियाँ और महिलाओं की दशा पीड़ा दायक रही हैं। देश तो आजाद हुआ परंतु इनसे मुक्ति नहीं मिली। इसी वेदना से आजादी की ग्यारहवीं वर्षगाँठ के समारोह पर 'माँ-भारती' नामक नाटिका का जन्म हुआ।

सामाजिक बुराइयों का सर्वाधिक प्रभाव महिलाओं पर पड़ता है। इससे निजात पाने के लिए महिला शिक्षा तथा महिला जागृति एक विकल्प है और इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए भी महिलाओं को ही आगे आना चाहिए। इस विचार को लेकर लिखे गये नाटक 'माँ-भारती' की प्रस्तुति स्त्री पात्रों से कराई गई है। नाटिका में ग्रामीण परिवेश, पात्रों में ग्रामीण महिलाओं की उपस्थिति तथा संवादों में लोकभाषा निमाड़ी का समावेश कथावस्तु के अनुरूप है। यही रचनाकार की कसौटी है जिस पर नाटककार शिवकुमार चवरे खरे उतरते हैं।

कथासार

देश की आजादी के दस वर्ष पूरे होने पर उत्सव मनाया जा रहा है। सुख समृद्धि और शांति की कामना लिए विभिन्न प्रांतों की वेशभूषा में युवतियाँ भारतमाता की आराधना कर रही हैं। माँ भारती प्रकट होकर अपनी चिन्ता से बेटियों को अवगत कराती है। वे बताती हैं कि, ''अभी तक देश में एकांगी विकास हो रहा है। समाज का दूसरा महत्वपूर्ण अंग, महिलाएँ, अभी तक शिथिल हैं। उनमें अशिक्षा, अज्ञान और परनिर्भरता एक बड़ी चुनौती है। इस दिशा में सुधारमूलक कार्यों की आवश्यकता है, जिसे तुम कल्याणमयी कन्याएँ कतई कर सकती हो। सभी युवतियाँ देश में नारी जागरण एवं ग्राम सुधार कार्यों में तन-मन से जुट जाने का संकल्प लेकर, माँ भारती के आशीर्वाद से भिन्न-भिन्न टोलियों में गाँवों की ओर प्रस्थान करती हैं।

उषा और प्रभा पहली टोली में हैं। उनकी मुलाकात ग्रामीण वृद्धा गेंदा माय से होती है, जो कि अपनी बहू के सिर पर पीपा रखकर चक्की की ओर जा रही होती है। युवतियाँ उनसे बातचीत करके समझाती हैं कि बहू से इतना लंबा घूँघट न कराएँ कि उसके सुंदर चेहरे को हवा ही न लगे। उसे भी दुनिया की हवा लगने दें। साथ ही मशीनी चक्की की बजाय घर घट्टी में पीसे आटे के गुणधर्म समझाती हैं। उन्हें ग्राम सुधार स्कूल में आमंत्रित करती हैं, जहाँ उन्हें लिखने-पढ़ने के अलावा घर-गृहस्थी की बातें, सिलाई-कढ़ाई आदि हुनर सिखाऐ जाएँगे।

दूसरी टोली में स्वर्ण और गुलशन हैं। एक मकान में ऊपर से, नौकरानी कचरा फेंकती है जो कि राह चलती कालेज की लड़कियों के ऊपर गिरता है। कहासुनी होती है, झगड़ा होता है और बात हाथापाई तक पहुँच जाती है। स्वर्ण और गुलशन मौके पर पहुँच कर बीचबचाव करते हुए उन्हें समझाती है कि एक ओर जहाँ अनपढ़ नौकरानी नागरिकता के नियमों की समझ नहीं रखती वहीं दूसरी ओर कालेज की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ बीच बाजार में एक अधेड़ महिला को गँवार कहकर उसका अपमान कर रही हैं। इस प्रकार दोनों पक्ष की महिलाओं को अपना-अपना कर्तव्य बताकर, उनमें सुलह कराकर दूसरी टोली अपनी राह पकड़ती है।

तीसरी टोली की इन्दु और मणि का पाला एक फेरीवाली से पड़ता है, जो कि गाँव-गाँव घूमकर सालम मिश्री, धवली मूसली आदि जड़ीबूटियाँ बेचती है। गरीबी, बीमारी और जानकारी के अभाव में भोले भाले ग्रामीण इनके झाँसे में आ

जाते हैं। चालाक फेरीवाले ग्रामवासियों को आसानी से ठग लेते हैं। ये युवतियाँ सही-गलत का मर्म बताते हुए सरकारी अस्पताल में इलाज के लिए उन्हें प्रेरित करती हैं।

चौथी टोली, सभ्य समाज में अभिशाप बनी भीख माँगने की प्रथा से जूझती है। एक भिखारिन लंगड़ी होने का स्वांग बनाकर भीख माँग रही होती है। उसने एक अच्छी-भली छोटी लड़की को जबरन अँधी बनाकर अपने साथ रखा हुआ है। कमला और भागवती नामक युवतियाँ भिखारिन की पोल खोलकर लोगों को सचेत करती हैं।

शाम को चारों टोली की युवतियाँ आपस में मिलकर अपने-अपने अनुभव सुनाती हैं और अगले दिनों के लिए योजनाएँ तैयार करती हैं। इस प्रकार 'माँ-भारती' की कल्याणकारी कन्याएँ नारी जागरण एवं ग्राम सुधार के अपने प्रण-पालन में डटी रहती हैं।

माँ भारती

विधा	:	प्रकरणी (स्त्री पात्र प्रधान, नाटिका)
कथावस्तु	:	सामाजिक
देशकाल	:	स्वातंत्र्योत्तर भारत का ग्रामीण अंचल
पात्र	:	विभिन्न प्रांतों की युवतियाँ, भारतमाता, सास-गेंदा माय, भिखारिन, फेरीवाली आदि
मंचन	:	बालिका कला मंदिर, खंडवा

आनंद : मुझे इस से घृणा हो गई है।

प्रकाश : घृणा उचित है। जो मनोवृत्ति मानव के श्रम को चूस कर पलती है, जो अपने दंभ में किसी की योग्यता स्वीकार नहीं करती, जो मनुष्य को मनुष्य के अधिकार से वंचित करना चाहती है, उससे घृणा अवश्य करो। किन्तु अपने आप में एक उपेक्षित भाव क्यों आने देते हो। तुम्हारे जीवन का हर क्षण अमर है, इसे क्यों भूलते हो, हताश न हो।

'टूटा तारा' से

अपना राज

देश के शासन तंत्र के अंतर्गत एक छोटी इकाई है नगर पालिका। यह संस्था भले ही छोटी हो परंतु इसका कार्य व्यापक एवं जटिल होता है। आम जनता से सीधे जवाबदेही के चलते इसकी स्थिति बत्तीस दाँतों के बीच जीभ की सी रहती है। लोग नागरिक नियमों का पालन नहीं करते, श्रमिक काम कम और वेतन अधिक चाहते हैं। नेताओं का अनुचित दबाव और आपूर्ति की कमी से समस्याएँ तथा असंतोष में वृद्धि होती है। ऊपर से चुनाव, दंगे, हड़तालें और शिकायतें। कुल मिलाकर चारों ओर अवसाद और अशांति से जूझता रहता है 'अपना राज'।

राजनीति का कुछ ऐसा मिजाज है कि यहाँ न तो कायदे कायम रहते हैं और न ही वायदे।

यह भी सच है कि ताली दोनों हाथों से बजती है। यदि हम चाहते हैं कि नगर पालिका अपना काम ढंग से करे तो नगरवासियों को भी नागरिकता के नियमों का ठीक से पालन करना चाहिए। कर्तव्य के बिना अधिकार का सुख नहीं मिलता। जनहित में इस पैगाम को जनसाधारण तक पहुँचाने की लेखक की तमन्ना, 'अपना राज' नामक हास्य व्यंग्य नाटक में झलकती है। इस मंच-प्रस्तुति का काल्पनिक कथानक नगरीय रोजमर्रा की वास्तविकता पर रचा गया है।

टिप्पणी – यहाँ यह ध्यातव्य है कि यह रूपक उस काल में लिखा गया था, जिन दिनों मैला ढोकर शौच-सफाई का चलन था।

कथासार

नगर की सड़क पर प्रातःकाल पलटूराम शास्त्री, समाज सेवक मोहन से वार्तालाप करते नजर आते हैं। शास्त्री शहर की सफाई से सन्तुष्ट नहीं है। सफाई दारोगा पिलपिली साहब आते हैं। उनकी दलील है कि सफाई तो दिन में एक बार की जाती है लेकिन लोग दिन भर यहाँ-वहाँ कचरा और शौच से गंदगी फैलाते रहते हैं, उपयुक्त साधन का प्रयोग नहीं करते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि कुछ कर्मचारी कामचोर हैं और नालियों में गंदगी बहा देते हैं। इसी बीच नगर पालिका सचिव घाणेकर आ जाते हैं। वे अपने मातहत लोगों को डाँट-डपट तो करते हैं परंतु मानते हैं कि कामगारों से सख्ती की तो वे हड़ताल कर देंगे। अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए वे बताते हैं कि लोगों की शिकायतें वाजिब हैं, सफाई व्यवस्थित नहीं होती है, पर जनता का राज है और कामगार भी जनता ही है। अब जनता दोनों ओर है, जनता को नाराज भी नहीं किया जा सकता। जनता के पास शिकायतें हैं तो प्रशासन के हाथ मजबूरियाँ। तय होता है कि नगर अध्यक्ष से मिलकर मसला हल किया जायेगा।

नगर अध्यक्ष अपने दफ्तर में कामकाज निपटा रहे हैं। फोन पर सूचना मिलती है कि गोपालगंज में आग लगी है। अध्यक्ष महोदय तुरंत फायर ब्रिगेड रवाना करने का आदेश देते हैं। सचिव सूचित करता है कि दमकल की एक मोटर सुधरने गई है और दूसरी गाड़ी विधायक महोदय के घर पानी देने गई है। इसी बीच गुस्साए हरिजन कामगारों का समूह दफ्तर में जबरन घुसकर एक महिला कामगार को हटाए जाने का विरोध करता है। इसी प्रकार अन्य समस्याओं-शिकायतों को लेकर लोग आते रहते हैं। यद्यपि महिला को कामचोरी और गंदगी नाली में बहाने की अनुशासनहीनता पर हटाया गया था परंतु जिद पर अड़े सफाई कर्मचारी हड़ताल पर चले जाते हैं।

बीच-बीच में अखबार वाले दस पैसे में प्रतियाँ बेचने के चक्कर में भड़काऊ खबरें छापते रहते हैं। लोग सड़कों पर उतर आते हैं और आने वाले चुनावों में मजा-चखाने के नारे लगाते हैं।

समाज सुधारक नवयुवक, मोहन, हड़ताली कामगारों को समझाने का प्रयत्न करता है। दिशा भ्रमित कामगार बौखलाहट में मोहन पर वार करते हैं। मोहन घायल हो जाता है। पुलिस दोषियों को गिरफ्तार कर लेती है। नगर अध्यक्ष,

मोहन का शुक्रिया अदा करते हैं। बकौल मोहन - विरोध की भावना ही विद्रोह का रूप लेती है। कामगार अधिकारियों के व्यवहार से असंतुष्ट होते हैं। वे महँगाई से भी दुखी हैं। समाधान हेतु मोहन, अधिकारियों को, संयम, अच्छा व्यवहार, नौकर-मालिक की भावना का त्याग और वेतन में वृद्धि के उपाय सुझाता है।

इंस्पेक्टर अपराधी हरिया का केस मोहन की उपस्थिति में दर्ज करना चाहता है। मोहन पश्चाताप से ग्रस्त हरिया को क्षमा करते हुए अपना केस वापस ले लेता है। लोग अगली बार मोहन को नगर अध्यक्ष बनाने का मन बनाते हैं।

अपना राज

विधा	:	हास्य व्यंग्य रूपक
कथानक	:	नगर पालिका की व्यवस्था और व्यथा की वास्तविक दशा पर काल्पनिक कथा
पात्र	:	मोहन, पिलपिली साहब, घाणेकर, हरिया, शास्त्रीजी, नगर अध्यक्ष
देशकाल	:	बीसवीं सदी के उत्तरार्ध का भारतीय नगर
मंचन	:	खंडवा

मंसाराम : मैं तो यह कह रहा था कि इस प्राणवान जग में सबसे महान शक्ति पेट की है। अनंत युग से मनुष्य पेट को प्रसन्न करने के लिए ही सदा व्यस्त रहता है। वह न भगवान मानता है, न अपना-पराया। उसका एक ही लक्ष्य है पेट भरना और उसके मार्ग में जो भी बाधा डालता है उन सबको मनुष्य कुचल देता है।

पेटूमल : वाह मंसारामजी, क्या पते की बात कही। (हँसता है)

बुद्धिदेवी : क्यों लोगों को बरगला रहे हो ? क्या मनुष्य भगवान को भूल गया है ?

मंसाराम : बेशक, ये बड़े-बड़े मंदिर, उपासनालय, देवालय, पंडित, पुजारी, पूजन-अर्चन क्या मनुष्य इसलिए करता है कि पत्थर का भगवान प्रसन्न हो जाय ? ये लाखों रुपये के छप्पन पकवानों का भोग उस मंदिर की मूर्ति के लिए बनाये जाते हैं ? क्या मूर्तियाँ खाती हैं ? बोलो बुद्धि बोलो। इसका उत्तर तुम्हारे पास नहीं है। मूर्तियों के पीछे पेट देवता साक्षात् विराजमान हैं। मूर्तियों की छलना में पेट भरने का कैसा नाटक खेला जा रहा है, जिससे सारा मानव समाज पागल है, बेहोश है। तब यही सिद्ध होता है कि संसार में सबसे महान शक्ति पेट तंत्र ही है, उससे कोई बड़ा नहीं है।

'पेट तंत्र' से

घर की आग

जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया मनुष्य गुफाओं से निकलकर समाज में रहने लगा। धीरे-धीरे अलग-अलग प्रकृति वाले मनुष्यों के समाज को संगठित करने के लिए समाजसुधारकों का एक वर्ग सक्रिय हो उठा। एक ऐसा ही मिशन है ग्राम सुधार से ग्राम विकास का। हमारे समाज में अज्ञान, अकर्मण्यता, अनाचार और अनियंत्रण जैसी वृत्तियों ने ग्रामीण जन-जीवन को कई विसंगतियों से भर दिया। स्वातंत्र्योत्तर भारत में यह स्थिति एक बड़ी चुनौती बनकर खड़ी हो गई क्योंकि तब कानून और नागरीय व्यवस्था हमारे अपने हाथों में आ चुकी थी। गाड़ी को पटरी पर लाने के लिए सरकार, समाज और व्यक्तिगत स्तर पर पुरजोर प्रयत्न हो रहे थे। ऐसे में किसी भी सजग साहित्यकार का तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपनी संवेदनाओं को साहित्य में समाहित करना स्वाभाविक है। नाटककार शिवकुमार चवरे का रूपक 'घर की आग' इसका प्रमाण एवं परिणाम है।

जैसा कि हम जानते हैं तत्कालीन हिन्दुस्तान गाँवों में बसा हुआ था और गाँव एक वृहत परिवार हुआ करता था, अतः घर की आग, देश की आग होती थी। इस आग को सुलगाने वाली वृत्तियों का शमन करके ही हम समाज में स्वास्थ्य, सुख और सभ्यता को बरकरार रख सकते थे। इसी विचारधारा को केंद्र में रखकर तत्कालीन समाज से घटनाक्रम, पात्र और संवाद उठाकर प्रस्तुत नाटक में पिरोये गए हैं।

कथासार

जयराम पटेल के आँगन में बैठक हो रही है। गाँव के बुजुर्ग माधो दादा समझाते हैं कि पितरों का श्राद्ध करना तो अच्छी बात है परंतु उनके कार्य के लिए उनकी छोड़ी गई जमीन-जायदाद को बेचना अथवा कर्ज के लिए गिरवी रखना गलत है। कर्ज में लोग प्रायः डूबते हैं, उबरते नहीं। जयराम, माधो दादा की बात से इत्तिफाक तो रखता है लेकिन अपनी मजबूरी के चलते उस पर अमल करने में नाकाम रहता है। गाँव के अन्य किसान भी उसे श्राद्ध का पुण्य कमाने की दुहाई देकर कर्ज लेने के लिए भड़काते हैं। अंततः वह कर्ज लेने की गरज से साहूकार के पास पहुँच ही जाता है।

जयराम का बिगड़ैल भाई धमकी देता है कि जायदाद में उसका बराबरी का हिस्सा है। वह न तो जमीन बेचने देगा न ही उस पर लिया हुआ कर्ज चुकाएगा। फिर भी जयराम लाचारी में जमीन गिरवी रखकर, ब्याज पर पाँच सौ रुपया कर्ज उठा लेता है।

गाँव में एक लठैत है, भीमा पहलवान, जो कि अपना कमीशन लेकर कोई भी उचित-अनुचित काम करने के लिए हाजिर रहता है। गुंडा प्रकृति के चलते जयराम के छोटे भाई बिसराम की भीमा पहलवान से अच्छी पटती है। साहूकार पकौड़ीमल का नौकर झींगुर, पहलवान की मदद लेकर कर्ज उगाही का काम करता है। साहूकार कंजूस और लालची है पर उसका बेटा ज्ञानचन्द, पढ़ा-लिखा समझदार नौजवान है। वह अच्छी सोच रखता है और समय-समय पर गाँव वालों का मार्गदर्शन करता है।

गाँव में जन्माष्टमी का उत्सव मनाया जाता है। बिसराम विघ्न डालता है किंतु ज्ञानू स्थिति को सम्हाल लेता है। ज्ञानू गाँव के पिछड़े नवयुवकों को शिक्षित करने के लिए पढ़ाता है। ग्रामीणों को श्रमदान और ग्राम विकास की ओर अग्रसारण करता है।

समय बीतता है। फसल अच्छी नहीं होने से जयराम साहूकार का कर्ज नहीं चुका पाता है। साहूकार मुनीम से जयराम की जमीन कुर्क करने को कहता है। इसी बीच बिसराम और भीमा लट्ठ लेकर प्रवेश करते हैं। कहासुनी होती है और

बिसराम गुस्से में साहूकार का सिर फोड़ देता है। साथ ही वह अपने भाई के घर को आग लगा देता है। घर स्वाहा हो जाता है। जयराम विलाप करता है। साहूकार पकौड़ीमल दम तोड़ देता है। बिसराम को पुलिस गिरफ्तार कर लेती है।

कर्ज की चिनगारी हरे-भरे परिवार को तबाह कर देती है। सूदखोरी की लालच साहूकार की जान ले लेती है।

पिता की मृत्यु के बाद ज्ञानू ने उनकी दौलतको ग्राम सुधार और ग्राम विकास के विभिन्न कार्यों में लगा दी। गाँव वालों की दशा पलट गई। सबने यह महसूस किया कि हर गाँव में एक ज्ञानचन्द होना चाहिए।

घर की आग

विधा	:	सामाजिक नाटक
कथानक	:	अज्ञान-अनाचार में फँसी ग्रामीण सोच पर आधारित, काल्पनिक
देशकाल	:	स्वातंत्र्योत्तर भारत का ग्रामीण अंचल
पात्र	:	जयराम, बिसराम, साहूकार, झींगुर, माधो दादा, भीमा पहलवान
मंचन	:	खंडवा

स्वर्णरेखा : क्या तुम सौंदर्योपासक हो ? इस अनंत चित्रशाला के चितेरे के चित्र तुम्हें अपने स्वाभाविक रंगों में दिखते हैं ? क्या इतनी तीव्रता से भागने वाले चित्रों की गति तुम बाँध पाये हो ? बोलो चित्रकार ?

चित्रकार : (स्वर्णरेखा की ओर देखकर) तुम कौन हो ? क्या सचमुच स्वर्ग की राका हो, या देवकन्या हो ? आज तक किसी ने मुझसे ऐसे प्रश्न नहीं किये।

स्वर्णरेखा : क्या मेरा परिचय ही इस प्रश्न के उत्तर में सहायक है ? चित्रकार उत्तर दो, परिचय मिलेगा।

'स्वर्णरेखा' से

नौकरी चाहिए

आजादी मिली तो विकास यात्रा में तेजी आ गई। अपना तन्त्र, अपना कारोबार, अपनी व्यवस्था में अनेकों महकमें बने। इनमें कामकाज निपटाने के लिए नौकरी देने और नौकरी पाने वालों की बाढ़-सी आ गई। परंतु भर्ती के भर्रा में गुणवत्ता कहीं भटक गई। नौकरियाँ - काबिलियत पर नहीं, काबिलियत के पुरजों को परखने पर मिलती है, जबकि काम करने वाले बेकार बैठे रह जाते हैं। देश में काम बहुत है, करने वाले भी बहुत हैं, किंतु होता बहुत कम है, क्योंकि महत्वपूर्ण पदों पर बैठे चाटुकार वेतनभोगियों को अपने मातहत, अपने जैसे ही नौकर चाहिए। लोगों को भी काम नहीं नौकरी चाहिए। अधिकांश सरकारी संस्थाओं की यह एक कड़वी सच्चाई है। इसी नौकरी चाहिए की कचोटन, नाटककार की लेखनी से निस्सृत होकर हास्य-व्यंग्य एकांकी में ढल गई है।

गुदगुदाने वाले अभिनय से भरपूर यह एक सफल रूपक है। प्रांतीय भेस और लहजे में, संभाषण करते इसके पात्र स्वाभाविक रूप से वाचिक एवं आहार्य अभिनय के द्वारा मनोरंजक वातावरण की सृष्टि करते हैं।

एक अंक के एक ही दृश्य में, एक केंद्रीय विचार को लेकर सीमित पात्रों के मनोरंजक अभिनय एवं संवादों से सजे हुए इस हास्य-व्यंग्य एकांकी में नाट्यशास्त्रीय तत्वों पर, नाटककार की पुख्ता पकड़ देखते ही बनती है।

कथासार

विभिन्न प्रांतों से लोग, लोक सेवा आयोग के कार्यालय में नौकरी के लिए इंटरव्यू देने आये हैं। कार्यालय का लिपिक उम्मीदवारों की अगवाई करते हुए उन्हें बताता है कि इस प्रांत की राजभाषा हिन्दी है अतः उन्हें हिन्दी में वार्तालाप करना चाहिए। अपनी-अपनी भाषाओं के लहजे में विभिन्न भाषा-भाषी पात्र हिन्दी बोलते हुए श्रोताओं को गुदगुदाते रहते हैं।

साक्षात्कार शुरु होता है। सबसे पहले मोहम्मद अशफाक खांडवी लखनवी अंदाज में तशरीफ लाते हैं। चूंकि इनके बाप-दादा लखनऊ से ताल्लुक रखते थे चुनांचे इनके अल्फाज, अंदाज और अदाएँ ठेठ लखनवी हैं। साक्षात्कारकर्ताओं को खुश करने के लिए वे उर्दू जुबान में हिन्दी के गुण गाते हैं, और उन्हें भोपाली गुटका भी पेश करते हैं। गुफ्तगू के दौरान पता चल जाता है कि मौलाना को नौकरी के लिए जरूरी मालूमात को छोड़कर बाकी दुनिया भर का इल्म है। उन्हें बेरुखी से रुखसत कर दिया जाता है।

दूसरे उम्मीदवार नयन रंजन चाटुर्ज्या आते हैं। प्राचीनकाल से लेकर अर्वाचीन काल तक की समस्त नृत्यकलाओं के ज्ञान का दावा करने वाले इन बंगाली बाबूमोशाय को भी शीघ्र ही बाहर का दरवाजा दिखा दिया जाता है। इसके बाद लम्बी-चौड़ी डिगरीधारी महालिंगम कांजीवरम ट्रक भर प्रमाण पत्र लेकर हाजिर होते हैं। वे हर क्षेत्र में अपनी अकूत योग्यताओं का खंब गाड़ते नजर आते हैं। चयनकर्ता आश्चर्यचकित हैं कि इतनी खूबियों को लेकर महाशय नौकरी की तलाश में भटक रहे हैं!

चौथे उम्मीदवार बैशाखीनन्दन ज्ञानसागर पधारते हैं। वे हिन्दी तो अच्छी बोलते हैं परंतु उनको सिनेमा संस्कृति ने बुरी तरह प्रभावित कर रखा है। उन्होंने 'वहीदा-रहमान-वर्णमाला' की खोज की है जिस पर उन्हें राष्ट्रपति पुरस्कार की पूरी उम्मीद है। अधिकारीगण उकताकर उन्हें भी चलता करते हैं। लिपिक आकर सूचना देता है कि अब कोई केंडिडेट बाकी नहीं है। सब चैन की साँस लेते हैं लेकिन इसी बीच नन्दीचरण नमक एक बेकार युवक ढीठता से प्रवेश करता है। पूछे जाने पर कि बिना आवेदन वह कैसे आ गया, बेकार युवक चयनकर्ताओं पर उंगली उठाता है - ''आप लोगों को नौकर चाहिए जबकि मुझे नौकरी नहीं, काम चाहिए। देश में सर्वत्र काम ही काम है परंतु महत्वपूर्ण पदों पर चाटुकार वेतनभोगी बैठे हैं जो न स्वयं

काम करते हैं न ही दूसरों को काम करने देते हैं। भौतिक विकास के बीच आम आदमी बेचारा कहीं दब गया है। वह पीड़ित, उपेक्षित और लाचार है। कर्मठ होकर भी बेकार है। मैं उसी का प्रतीक हूँ।'' वह युवक चयनकर्ताओं को इस बात के लिए भी कटघरे में खड़ा करता है कि वे लोग हिन्दी प्रांत में ऐसे कर्मचारी का चयन कर रहे हैं जिसे हिन्दी में कार्य करना है जबकि वे स्वयं अंग्रेजी की टाँग तोड़ रहे हैं। बेकार युवक का रोश इस बात को लेकर भी है कि जिस कार्य को लेकर, जो मानदंड निर्धारित होते हैं, उनके अनुरूप देश में काम नहीं हो रहा है। सरकारी कामकाज में बस खानापूर्ति की जाती है। देश के बारे में कोई नहीं सोचता।

साक्षात्कार तो हुआ पर समस्या वहीं की वहीं है। पद रिक्त हैं और 'नौकरी चाहिए'।

नौकरी चाहिए

विधा	:	हास्य-व्यंग्य रूपक
कथानक	:	नौकरी एवं साक्षात्कार पर आधारित
पात्र	:	मौलाना अशफाक खांडवी, नयनरंजन चाटुर्ज्या, महालिंगम कांजीवरम, बैशाखीनन्दन ज्ञानसागर, नन्दीचरण बेकार, लिपिक तथा साक्षात्कारकर्ता
देशकाल	:	बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, मध्यभारत के एक शहर में लोक सेवा आयोग का कार्यालय
मंचन	:	1968 में खंडवा में मंचित

राणा	:	संसार है तो बंधन भी होंगे। शरीर बंधन से मानव मर कर ही छूटता है। यह सब ढोंग है संसार को भूलने का जाल है।
मंत्री	:	महाराज, आप स्वयं बुद्धिमान हैं, मैं क्या कह सकता हूँ? इतना अवश्य कहने का साहस करूँगा कि शरीर के सारे धर्म होते हुए भी जीवात्मा उससे मुक्त है। शरीर संस्कारों के कारण मिलता है और उसी के वश हो कर वह संसार के सुख-दुख भोगता है। पर वास्तव में वह उससे अलग है। संसार शरीर को तो बाँध पाया है, पर उस आत्मा को कैसे बाँधा जा सकता है जो उस परम तत्व को पा चुका है। वह देह से ऊपर उठ चुका है महाराज। राजमाता पुराने संस्कारों से यह ज्ञान प्राप्त कर चुकी हैं। इसी से वह बंधन रहित हैं। पत्थर में भी भगवान देखना उन्हीं का काम है, हमें तो वह पत्थर ही दिखता है।

'मीरा का विषपान' से

भूस के लड्डू

नाटक के सभी तत्वों की कसौटी पर खरा उतरने वाला 'भूस के लड्डू' नामक रूपक श्री शिवकुमार चवरे की लोकप्रिय मंच प्रस्तुति रही है। इसे लेखक के हास्य-व्यंग्य लघुरूपक, 'अपना राज' का द्वितीय भाग कहा जा सकता है। समान मूल ढाँचा, देशकाल, स्थितिजन्य अभिनय, पात्रादि होते हुए भी दोनों की कथावस्तु अलग-अलग है। 'अपना राज' समस्यामूलक है जबकि 'भूस के लड्डू' समाधानपरक रचना है। इनका रसानंद अर्द्धशती पूर्व की भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए लिया जाना चाहिए।

इस नाटक के अंतर्गत तत्कालीन नगर पालिका की कार्यप्रणाली तथा जनमानसिकता को सफलतापूर्वक प्रतिबिंबित किया गया है। राजनीति में पद पैसा और प्रतिष्ठा जितनी लुभाती है, उससे अधिक रुलाती भी है। यही तो हैं भूस के लड्डू जिन्हें, जो खाए सो पछताए, जो न खाए वो भी पछताए।

खंडवा नगर पालिका की 95वीं वर्षगाँठ के अवसर पर स्वयं नाटककार शिवकुमार चवरे के निर्देशन में दिनांक 6 और 7 दिसम्बर 1961 को टाउन हाल के प्रांगण में 'भूस के लड्डू' नाटक की यादगार प्रस्तुति हुई थी।

कथासार

प्रातःकाल, नगर का मुख्य मार्ग। विद्याधर शास्त्री, फोकटे साहब के घर जाने के लिए निकलते हैं और रास्ते में मुलिया सफाईवाली से उलझ पड़ते हैं। शास्त्रीजी को लगता है कि शहर की सफाई व्यवस्था ठीक नहीं है। इसके लिए उन्हें नगर पालिका में बात करनी पड़ेगी। मुलिया का ठस्सा है कि, ''एक तो हमसे गंदा काम कराते हैं और ऊपर से रोब भी झाड़ते हैं। क्या हम इंसान नहीं हैं। जाओ मेरे मुँह मत लगो, रिपोर्ट कर दो।'' ब्रह्माग्नि में घी पड़ जाता है। परंतु जब यह पता चलता है कि मुलिया तो विधायक के घर चाय बनाती है तो ब्राह्मण की क्रोधाग्नि, हवनकुंड की दिव्यज्योति बन जाती है।

हरिजन विधायक फोकटे साहब के घर बैठक हो रही है। शास्त्रीजी उनके बेटे के लग्न का मुहूर्त निकालने पहुँचते हैं। नगर पालिका सदस्य गुचीलाल गुप्ता, नेताजी को विश्वास दिलाता है कि उनके व्यक्तिगत कार्यों को वह पूरी प्रशासनिक मदद से निपटा लेगा। नगर पालिका की विशेष सभा से पूर्व ढर्रे की रणनीति पर कुछ सदस्यगण आपसी चर्चा करते नजर आते हैं। ये लोग नीतिगत निर्णयों को अपने हित के हक में किये जाने हेतु जोड़-तोड़ में लगे हुए हैं। इसी बीच खबर आती है कि शास्त्रीजी के घर की दीवार गिर गई है। लोग नगर पालिका के रवैये से नाखुश हैं।

चौथे दृश्य में, नगर अध्यक्ष, सचिव, दारोगा आदि शहर का मुआयना करते नजर आते हैं। ये लोग सड़क पर कचरा फेंकने वाले और गंदगी फैलाने वाले वाकयों से वाकिफ होते हैं। मौके पर शिकायतें भी मिलती हैं। नगर अध्यक्ष 'भाई साहब' समस्याओं का तत्काल हल निकालते हैं। वे सार्वजनिक साफ-सफाई में जनभागीदारी तथा शौचालयों की संख्या बढ़ाने संबंधी निर्देश देते हैं। आवारा मवेशियों, फेरीवालों, लेनदारों का समाधान खोजते हुए जनता में विश्वास पैदा करते हैं।

अगले दृश्य में, नगर पालिका की सभा चल रही है। महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार हो रहा है। स्वार्थी सदस्यों की मंशा को भाँपते हुए, भाई साहब उनके प्रस्तावों को दरकिनार करके, योग्यता, आवश्यकता और जनसाधारण की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए फैसले लेते हैं। भ्रष्ट ठेकेदारों के टेंडर रद्द करके उनके पिछले घटिया कार्यों पर जाँच बैठा देते हैं। नये काबिल लोगों को मौका देते हैं। विधायक महोदय को विवाह मंडप की सशर्त मंजूरी देते हैं। इसी बीच हम्माल गली में आग लगने की खबर आती है। फोकटे साहब के घर भेजी गई मोटर तुरंत वापस बुला ली जाती है। नगर अध्यक्ष स्वयं सभा के सदस्यों को लेकर आग बुझाने में मदद के लिए चल पड़ते हैं।

लाभ और लोकप्रियता के लिए झूठे वादे करने वाले सदस्यों की अब जान पर आ पड़ी है। वे लोग परेशान हैं और अध्यक्ष से नाराज हैं। राजनीति अब उन्हें सालने लगी है।

फोकटे साहब के घर शादी में भाई साहब जाते तो हैं परंतु बाजार में निर्माणाधीन इमारत गिरने की खबर पाते ही लौट आते हैं। इमारत के मलबे में दबकर एक मिस्त्री की मौत हो जाती है। मृतक के परिवार को आर्थिक सहायता देने और नगर पालिका की इमारत को दुबारा बनवाने पर विचार हेतु तत्काल अधिवेशन बुलाया जाता है। इमारत को झूठा प्रमाणपत्र देने वाले सदस्य और भ्रष्ट ठेकेदार की मिलीभगत से हुए नुकसान की भरपाई के लिए आपस में मिलकर हर्जाना भरा जाता है। कुछ सदस्यों में तू-तू मैं-मैं भी होती है। भाई साहब कहते हैं कि - नगर पालिका के सदस्यगण नाम के लिए नहीं, काम के लिए चुने जाते हैं। जनता उनके हाथों में लाखों की धरोहर सौंपती है और उम्मीद करती है कि वे उसकी हिफाजत और उन्नति करेंगे। सेवा न करके मात्र मेवा चखने वालों को वास्तविकता से अवगत कराते हुए अध्यक्ष महोदय समझाते हैं कि दूर से दिखने वाला यह आकर्षण बड़ा लुभावना है पर भीतर आपने देखा है कि सचमुच स्थिति क्या है।

अंत में नगर पालिका के उपाध्यक्ष हाफिजजी चुटकी लेते हैं कि यही तो भूस के लड्डू हैं जो खाए वो पछताए, जो न खाए वो भी पछताए। सदस्यगण अंततः अपनी-अपनी कमजोरियों का आकलन करते हुए नगर अध्यक्ष की सुधारवादी नीतियों से सहमति जताते हैं।

भूस के लड्डू

विधा	:	नाटक
कथानक	:	नगर प्रशासन पर आधारित
देशकाल	:	स्वातंत्र्योत्तर मध्य भारत में निमाड़ जिले का एक नगर
पात्र	:	नगर पालिका अध्यक्ष - भाई साहब, उपाध्यक्ष - हाफिजजी, एम.एल.ए.-फोकटे साहब, सदस्य - छोटू भाई, गुप्ता, हरकचन्द, दारोगा - पिलपिली साहब, नागरिक - मूलजी, शास्त्रीजी, सफाईवाली - मुलिया आदि
मंचन	:	खंडवा नगर पालिका के प्रांगण में दिसंबर 1961 में सफल मंचन

गर्वित रूप

नाटककार शिवकुमार चवरे का लघु रूपक 'गर्वित रूप' एक प्रयोगात्मक एकांकी है। इसके कथानक में मनोविकारों का अंतर्द्वंद्व निहित है। संक्षिप्त सटीक एवं सारगर्भित संवाद इस एकांकी के प्राण हैं। नाटककार ने प्रकारांतर से 'सत्यं शिवं सुंदरम्' का जीवन दर्शन प्रस्तुत किया है। इसके तीनों प्रमुख पात्र मानव चित्तवृत्तियों के प्रतीक हैं। इसकी एकमात्र पात्री, 'रूप' मनुष्य की सौंदर्य भावना को लक्षित करती है। भोग-विलास की वृत्ति का प्रतीक पात्र 'ऐश्वर्य' सौंदर्य का उपासक है। तीसरा पात्र है 'कवि', जो कि वैचारिक धरातल पर जीवन का दर्शन प्रस्तुत करता है। वस्तुतः यही पात्र नाटककार की सोच का प्रतिनिधि है। और एकांकी का हेतु भी यही है।

इस एकांकी रूपक की विशेषता है कि इसका आधार मनोवैज्ञानिक है। इसमें पारंपरिक ऐतिहासिक आख्यान, नान्दीपाठ आदि नहीं है। संकलनत्रय का निर्वाह कुछ ऐसा हुआ है कि एक ही स्थान पर काल एवं घटना की दो कालावधियों को एक ही अंक के एक ही दृश्य में समेट लिया गया है जिससे व्यवधानरहित निरंतरता और रोचकता बनी रहती है। यह रूपक जितना अभिनेय है उससे कहीं अधिक पाठ्य भी है। इसके विषय, शिल्प और संवादों की कसावट देखते ही बनती है।

गर्वित रूप में नाटककार ने सत्य, सौंदर्य और लिप्सा की ऐसी त्रिवेणी गूथी है जो मानव के मनोवेगों में कभी न कभी बहती ही है।

कथातत्व

सद्वृत्तियों के प्रतीक कवि का संक्षिप्त स्वगत गीतात्मक प्रस्तावना के साथ एकांकी का आगाज होता है। नारी पात्र, 'रूप' की मधुर नूपुर ध्वनि से सरिता किनारे बैठे कवि का ध्यान भंग होता है। उन्मादिनी सरिता और गर्वित रूप में कोई अंतर नहीं होता। कवि, किनारों को मसलती उन्मत्त सरिता और विश्वमानव को विमोहित करती गर्वित रूप को कूतने लगता है।

अनंत सौंदर्यमयी, रूप चाहती है कि कवि उसकी सत्ता के सौष्ठव को वरण कर ले जबकि कवि का दृष्टिकोण है कि मूर्ति के बन्धन में देवता बाँधे नहीं, उतारे जाते हैं।

रूप कवि के विवेक पर आकर्षित तो होती है परंतु उसकी गूढ़ बातों में उलझ जाती है। कवि के लिए सौंदर्य, साधना का बाह्य रूप न होकर एक अतींद्रिय आकर्षण है। वह अलंकार, रंग और आकर्षण से परे केवल रूप को अपनी तृप्ति बनाना चाहता है। इसी बीच विश्व साम्राज्य का भोक्ता नाटक का तीसरा पात्र, 'ऐश्वर्य' प्रवेश करता है। वह 'रूप' को बहकाता है। कहता है कि रूप तो ऐश्वर्य पर आश्रित है। सागर में समागमित सरिता के समान ही रूप को भी ऐश्वर्य के हृदय में घुल-मिल जाना चाहिए। जीवन प्रवाह वहीं शांत होता है। विकसित यौवन की सार्थकता यही है कि वह किसी का शृंगार बने। ऐश्वर्य की आँखों का जादू, रूप को सम्मोहित करने लगता है। इस प्रलोभन में कि ऐश्वर्य के साम्राज्य में सौंदर्य का मंदिर सूना पड़ा है और वहाँ अपनी प्रतिमा प्रतिष्ठित हो जायेगी, रूप काँपते पैरों से ऐश्वर्य के साथ रथ में सवार होकर चली जाती है।

कुछ वर्षों के बाद उसी स्थान में सूखी सरिता के साहिल पर उदास कवि उम्मीद लगाये बैठा है। विलाप करती हुई रूप प्रवेश करती है। लाखों पुजारियों की देवी, विलास के रंगालय की अभिनेत्री की दयनीय दशा देखकर कवि आश्चर्यचकित हो जाता है।

अभी तक 'रूप' बाह्य आकर्षण को ही सौंदर्य का सत्य मान बैठी थी 'ऐश्वर्य' मादकता में चेतना खो बैठी थी, परंतु अब उसने जान लिया है कि विश्व, पत्थर की प्रतिमा को ही पूज सकता है, मानव को नहीं। देह, सौंदर्य पर बनाया हुआ ऐश्वर्य का मायाजाल है। प्रेम, पूजा सब छल है, मिथ्या है। वहाँ विलास है, वासना है, अतृप्ति है। उसकी समझ में आ चुका है कि

बाह्य आकर्षण, अंधकार है, असत्य है, अस्थायी है। परंतु अब सब कुछ खोकर उसने सत्य को पा लिया है। आज उसके पास सौंदर्य नहीं, उन्माद नहीं, यौवन भी नहीं, केवल सत्य है।

शांति पाने के लिए वह कवि की शरण में आ जाती है। कवि 'रूप' के इस रूप के लिए अपने हृदय में स्थान बना लेता है। वह कृतार्थ हो जाता है। उसे आकर्षण और वासना रहित सत्य-सौंदर्य का दर्शन हो जाता है। कवि, 'रूप' को साथ लेकर 'ऐश्वर्य' के अन्धे विश्व में, देह-सौंदर्य पर मिटने वाली लाखों अतृप्त जीवात्माओं को सत्य-सौंदर्य से शांति प्रदान करने हेतु निकल पड़ता है।

गर्वित रूप

विधा	:	एकांकी रूपक
पात्र	:	रूप, ऐश्वर्य, कवि
कथानक	:	मनोभावों पर केंद्रित
प्रस्तुति	:	बालिका कला मंदिर, खंडवा

ऋतुराज

ऋतुराज एकांकी लघु दृश्य-काव्य है। इस छोटी-सी रचना में सभी पात्र अमानव हैं। छह ऋतुओं के अलावा वसुंधरा रस लोलुप भ्रमर, कर्णप्रिया कोयल, सौंदर्य संग सुगंध से सजी-धजी आम्र मंजरी और प्रकृति प्रदत्त नवकिसलय जैसे मनोहारी पात्रों से मंचन योग्य यह गीति रूपक दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देने की क्षमता रखता है।

मूर्त वसुंधरा प्रवेश करती है। वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर और हेमंत ऋतुएँ उसका अभिनंदन करती हैं। चिरसुंदर कलेवर को सभी प्रणाम करती हैं। वसुंधरा भी अपनी छह सखियों को चिर-नवीन, रस-विलीन बने रहने की कामना करती है। ये सखियाँ, प्रभु के विराट रूप को देखने निमित्त धरती की आँखें हैं।

बाँसुरी की मधुर लय, कोयल की कूक और आम्र पल्लवों की सरसराहट के साथ मृदंग की ताल पर वसंत का नृत्य नैसर्गिक आनंद निष्पन्न करता है।

ऋतुराज

विधा	:	गीति रूपक (एकांकी)
पात्र	:	वसुंधरा, छह ऋतुएँ
कथानक	:	काल्पनिक
प्रस्तुति	:	वसंतोत्सव पर बालिका कला मंदिर, खंडवा

नवचेतन जागा

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। जड़ सौंदर्य भी मनुष्य को निष्क्रिय बना देता है जबकि नित परिवर्तन से प्राणियों में नव चेतना का संचार होता है। इसी मनोदशा को लेकर नाटककार ने 'नवचेतन जागा' नामक काव्य नाट्य की रचना की है। इस गीत-प्रधान लघु एकांकी रूपक की काल्पनिक कथावस्तु को दो दृश्यों मे समेटा गया है। इसके पात्रों में नर और नारायण के अलावा धरती और छह ऋतुएँ भी हैं। देशकाल अनन्त युगों पूर्व की भारत भूमि है। लेखक ने इस अनूठी कल्पना की प्रस्तुति के लिए गीत-संगीत का समुचित प्रयोग किया है, जो कि सर्वथा अनुकूल भी है। उन्होंने पृथ्वी पर विभिन्न ऋतु परिवर्तन से उत्पन्न नवचेतना जागृति के पीछे एक पुरातन कथा गढ़ी है।

कथावस्तु

वसुंधरा के अनुष्ठान से विराट रूप ईश्वर प्रकट होते हैं। हिरण्यगर्भा ईश्वर को बताती है कि उसके धरतीपुत्र अकर्मण्य एवं असंतुष्ट हैं। चाहे उसका हृदय फटकर अंतर का हिरण्य धरातल पर क्यों न बहाना पड़े, प्रभु कुछ ऐसा करें, जिससे मनुष्यों में उत्साह भर जाए। ईश्वर पृथ्वी को, ढाढ़स दिलाते हैं। साथ ही समझाते भी हैं कि मानव स्वर्ण खाकर जीवित नहीं रह सकेगा अतः अंतर का हिरण्य बहाने की आवश्यकता नहीं है। आज यदि वह पत्थर के समान जड़ है तो कल स्वर्ण के समान जड़ हो जाएगा। इसके साथ ही विराट रूप धरा को मनुष्य की निश्चेष्टा का कारण भी बताते हैं। वे समझाते हैं कि मनुष्य को कुसुम कलियों की खिलखिलाहट चाहिए। उसे तप्त धरती पर शीतल हवाएँ चाहिए। उमड़ती-घुमड़ती मेघ-मालाओं से निस्सृत बूँदों की ताल में नवगीत चाहिए। जीवन में रस और जगत् में नित परिवर्तन चाहिए। वसुंधरा की मनुहार पर ईश्वर इसका निदान भी बताते हैं - ''आज से तुम्हारे धरातल पर नया परिवर्तन होगा। वर्ष में छह बार प्रकृति तुम्हारा शृंगार करेगी। इससे मानव विमोहित होगा। उसमें नये प्राण, नई उमंग और नई चेतना जागेगी।''

ईश्वर के वरदान से धरा धन्य हो जाती है। वातावरण संगीतमय हो जाता है। वसंत झूमता है। वह भ्रमर, लहर और समीरण के साथ नृत्य करता है। पुरुष और नारी भी नाच उठते हैं। खुमार छाता है। प्यार गाता है। कुसुमित डालियाँ झूमती हैं। कोयल कूकती है। उल्लास झलकता है और मादकता छलकती है। अब न तो लिप्सा है, न वासना, अब नवचेतन जागा है।

नवचेतन जागा

विधा	:	गीतप्रधान एकांकी
कथानक	:	काल्पनिक
पात्र	:	विराट रूप, वसुंधरा, नर-नारी, वसंतादि ऋतुएँ
देशकाल	:	अनंत युगों पूर्व, भारत भूमि
मंचन	:	वसंत पंचमी, 1954 (खंडवा)

हम कहाँ !

आजादी के पचास वर्ष पूरे होने के बाद देश की तत्कालीन दशा को कथानक बनाकर इस लघु एकांकी की रचना की गई है। नेता, व्यापारी, कृषक, मजदूर, कर्मचारी और देश के प्रतीक, 'भारत' जैसे पात्रों के माध्यम से राष्ट्र की बिगड़ती दशा एवं राजनैतिक लापरवाही के बीच देश की पीड़ा के रूपक को केंद्रबिंदु बनाकर बड़ी कुशलता से लेखक ने प्रस्तुत किया है। एक दृश्य के इस एकांकी में विशाल देश की जटिल समस्याओं को न केवल समेटा है बल्कि उनका समाधान भी इंगित किया गया है।

यहाँ ध्यातव्य है कि नाटककार ने जिस नेता पात्र की कल्पना की है वह सच्चाइयों से भले ही अनभिज्ञ है परंतु देश और देशवासियों के प्रति बेवफा नहीं है। आज के कथित नेताओं जैसे भ्रष्ट नहीं है। रचनाकार जानता है कि सोये हुए को जगाया जा सकता है और यह कार्य उन्होंने मुस्तैदी से किया है।

कथातत्व

नेताजी इस मुगालते में जी रहे थे कि देश में सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा है। बाँधों, कारखानों के निर्माण से प्रगति हो रही है। वे बच्चों से भारतमाता की जय के नारे लगवा रहे हैं। व्यथित भारत प्रवेश करता है। वह नेता को अवगत कराता है कि जड़ निर्माण से भारत का आधा शरीर ईंट, पत्थर और सीमेंट का हो गया है। इस निर्माण के बोझ से भारत की चेतना दब गई है। नेता चुप हो जाते हैं। व्यापारी, मजदूर, किसान और कर्मचारी का एक के बाद एक प्रवेश होता है। सभी देश की अव्यवस्था का रोना रोते हैं। व्यापारियों की कालाबाजारी और कर्मचारियों का भ्रष्टाचार उजागर हो जाता है। अन्नदाता किसान की भुखमरी और विकास पुरुष, मजदूर की बदहाली जाहिर होती है। भारत, नेता को देश का यथार्थ दर्शन कराता है, और चाहता है कि नेता लोग ऐसा आचरण करें कि देशवासियों में दया, प्रेम, ममता और त्याग की भावना जागृत हो अन्यथा देश निष्प्राण हो जायेगा। नेताजी स्वीकार करते हैं कि अभी तक वे गलतफहमी में जी रहे थे। अब उनकी आँखें खुल गई हैं। उन्हें सच्चाई का मार्गदर्शन हो चुका है। वे सब मिलकर संकल्प लेते हैं कि व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर देश की भलाई के लिए कार्य करेंगे।

हम कहाँ

विधा	:	लघु एकांकी
कथानक	:	काल्पनिक
देशकाल	:	बीसवीं सदी के अंत का भारत देश
पात्र	:	नेता, भारत, व्यापारी, किसान, कर्मचारी, मजदूर
मंचन	:	खंडवा

अपराधी कौन

पशु बलि जैसी अधम अमानवीय प्रथा के विरुद्ध नवजागृति की इच्छा से नाटककार ने एक ऐतिहासिक सत्य घटना को खँगाला है। इस लघु एकांकी की आत्मा लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व की है, और घटना कपिलवस्तु गणतंत्र के गणनायक महाराज शुद्धोधन की राजसभा की है। गौतम बुद्ध बनने से पूर्व ही राजकुमार सिद्धार्थ के हृदय में प्राणीमात्र के प्रति करुणा का प्रस्फुटन होने लगा था। देवी भक्त शाक्तों द्वारा दी जा रही पशु बलि के प्रतिकार में राजकुमार को अपने ही राज्य के न्यायालय में, अपने पिता शुद्धोधन के समक्ष अभियुक्त बनकर खड़ा होना पड़ा था। तथागत के जीवन की एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना की पृष्ठभूमि पर रचा गया लघु एकांकी रूपक 'अपराधी कौन' आज भी प्रासंगिक है।

कथावस्तु

कपिलवस्तु की राजसभा में न्याय की गुहार लगाते शक्तिपूजक शाक्तों का प्रवेश होता है। उनका मंतव्य है कि शक्तिपूजा उनका धर्म है और उनकी देवी पशु बलि से प्रसन्न होती है। यही उनकी इष्ट साधना है। उनका आरोप है कि कुमार सिद्धार्थ ने उनके बलि के लिए ले जा रहे पशुओं को बंदी बनाकर उनकी साधना के विरुद्ध अपराध किया है। महाराज अपने पुत्र पर लगे अभियोग से विचलित होते हैं। सिद्धार्थ स्वयं राजसभा में उपस्थित होकर अपना पक्ष रखते हैं। वे सभा को समझाते हैं कि शाक्तों की इष्ट साधना एक कल्पना है। जिन बेजुबान पशुओं को हम जीवन दे नहीं सकते उनका जीवन मिटाने का हमें कोई अधिकार नहीं है। निरीह पशुओं की चीत्कार में कैसी मंगलकामना। क्या विश्व स्रष्टा ने हमें अन्य जीवों पर अत्याचार करने का हक दिया है। मानव एक श्रेष्ठ तर्कशील प्राणी है। जिस देवी को लोग इष्ट मानते हैं, वह सृष्टिकर्ता है। वह अपने ही बनाए सुंदर संसार को नष्ट होते कैसे देख सकती है। क्या देवी रक्त की प्यासी हो सकती है। वह तो परम दयालु है। मानव कल्याण दया और शांति में है, हत्या में नहीं। जरा सोचिए जिन प्राणियों की बलि दी जाती है क्या उनका निर्माण करने की आप में क्षमता है। सिद्धार्थ की वाणी सबको निरुत्तर कर देती है। सिद्धार्थ महाराज शुद्धोधन से कहते हैं - ''राजन्! मैंने मूक प्राणियों की रक्षा की है, जबकि ये शाक्त उनकी हत्या करना चाहते हैं। राजसभा व्यवस्था दे कि अभियोग कैसा ? और 'अपराधी कौन ?''

अपराधी कौन

विधा	:	लघु एकांकी रूपक
कथानक	:	ऐतिहासिक
देशकाल	:	ढाई हजार वर्ष पूर्व कपिलवस्तु की राजसभा
मुख्य पात्र	:	सिद्धार्थ, महाराज शुद्धोधन, शाक्त लोग
मंचन	:	खंडवा

मैं आजादी हूँ

हमारी इंद्रियाँ किसी को अनुमान से जानती और अनुभूति से पहचानती हैं। जीवन में ऐसे अनेकों प्रकरण आते हैं जिन्हें हम जानते जो हैं परंतु पहचान नहीं पाते हैं। हमारी आजादी भी उन्हीं में से एक है। हम अपनी आजादी के बारे में बहुत कुछ जानते हैं। हमने उसकी सुंदर सजीली कल्पनाएँ संजोए रखी हैं किंतु जब वह अपने बदहाल रूप में हमारे सामने आकर खड़ी हो जाती है तो हम उसे पहचान ही नहीं पाते हैं। इस सच्चाई को उजागर करती भावना को केंद्र में रखकर 'मैं आजादी हूँ' नामक लघुरूपक की रचना हुई है। इसके सभी स्त्री पात्रों में मुख्य पात्र स्वयं आजादी है। इस लघु एकांकी में व्यंग्य का अच्छा समावेश है।

कथासार

आजादी की वर्षगाँठ मनाई जा रही है। 'भारत माता की जय' और 'आजादी अमर रहे' के नारे लगाए जा रहे हैं। उत्सव के माहौल में विभिन्न प्रांतवासी सखियाँ एक दुबली-पतली फटेहाल स्त्री को पागल-गँवार-भिखारिन जानकर दुतकार रही हैं। स्त्री बड़ी शालीनता से पूछती है कि ''जिसके लिए तुम जश्न मना रहे हो क्या तुम में से किसी ने उसे देखा है ?'' सखियाँ उसका मजाक उड़ाती हैं - ''आजादी भी कोई देखने की चीज है ?'' आजादी (स्त्री) अपना परिचय देती है - ''बहनों ! तुमने केवल मेरा नाम सुना है। मुझे आज तक देखा कहाँ ! आज मेरी यह दशा तुम्हीं लोगों के कारण हुई है। जन्म से तो मैं एक दिव्य बाला थी। त्याग, तपस्या और वीरों के बलिदान ने मुझे नवजीवन दिया। बापू ने, सत्य-अहिंसा से मेरा शृंगार किया परंतु बाद में देश, दलों और राज्यों में बँट गया। भाषा, सीमा, चुनाव आदि झगड़ों में मेरी यह दशा हो गई। मैं विदेशी कर्जों में जी रही हूँ। मुट्ठी भर लोगों के धनकुबेर होने से देश खुशहाल नहीं होता।'' सभी सखियाँ आजादी की वास्तविकता जानकर आत्मग्लानि और पश्चाताप से भर जाती हैं। वे 'आजादी' से मार्गदर्शन चाहती हैं कि अब उन्हें क्या करना चाहिए। आजादी राह दिखाती है, उन्हें समझाती है कि भिन्न-भिन्न प्रांतों की विविधताओं को एक सूत्र में पिरोकर ही देश को मजबूत बनाया जा सकता है। तभी देश अजेय बनेगा। आजादी की दशा भी तभी सुधरेगी। विभिन्न प्रांतों का प्रतिनिधित्व करने वाली सखियों की आँखें खुल जाती हैं। वे सभी, आजादी की शिक्षा पर अमल करने का प्रण लेकर प्रस्थान करती हैं।

मैं आजादी हूँ

विधा	:	झलकी
कथानक	:	आजादी की विडम्बना पर आधारित
देशकाल	:	स्वतंत्रता दिवस पर, देश में
पात्र	:	आजादी, विभिन्न प्रांतों की युवतियाँ
मंचन	:	खंडवा

नई किरण

नई किरण की कथा समाज में फैली अंधविश्वासी सोच पर आधारित है। दो दृश्यों वाली इस एकांकी झलकी में नाटककार ने बीमार पर भूत-प्रेत की छाया के लिए, पूजा पाठी ग्रामीण महिला की रूढ़िवादी मनोदशा का चित्रण किया है। साथ ही इस सामाजिक बुराई को नकारने के लिए एक नई किरण का आह्वान भी किया है। बाल दिवस सन् 1964 को लिखा यह लघु एकांकी स्त्री पात्र प्रधान है।

कथासार

विभिन्न प्रांतों की युवतियाँ भारतमाता का आह्वान करती हैं। भारतमाता प्रसन्न होकर अशिक्षित ग्रामीण महिलाओं की दीन-दशा पर युवतियों को सचेत करती है कि अंधविश्वासी महिलाओं की गोद में पलती कमजोर संतानें देश के भविष्य के लिए खतरा साबित हो सकती हैं। भारत माता युवतियों को आशीर्वाद देती हैं कि वे गाँव-गाँव जाकर अंधविश्वास के विरुद्ध जनजागरण पैदा करें और उम्मीद की एक नई किरण पैदा करें।

दूसरे दृश्य में एक ग्रामीण महिला अपने बीमार बच्चे का इलाज देवी रूपधारी जादूगरनी से करवा रही है। जादूगरनी बालक पर पीपल वाली चांडाल की प्रेत छाया बताकर झाड़-फूंक कर रही है। देवी के चढ़ावे के लिए वह मुर्गी, चाँवल, गुड़, घी, नारियल आदि सामग्री पीपल के नीचे रखने का आदेश देकर धागा बाँधने का ढोंग करती है। तभी युवतियाँ वहाँ आकर जादूगरनी का सामान फेंक देती हैं और पुलिस का डर बताकर उसे भगा देती हैं। वे बीमार बालक को अस्पताल ले जाकर इलाज कराती हैं और ग्रामीण महिला को अन्धविश्वास की सोच से बाहर निकालती हैं।

नई किरण

विधा	:	लघु एकांकी झलकी
कथानक	:	अशिक्षा एवं अंधविश्वास पर आधारित
देशकाल	:	बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ग्रामीण भारत
पात्र	:	भारत माता, जादूगरनी, युवतियाँ, ग्रामीण महिला
मंचन	:	खंडवा

सबै भूमि गोपाल की

महापुरुषों का चरित्र, समाज और देश की दशा-दिशा निर्धारित करता है। बीसवीं सदी में महात्मा गाँधी और आचार्य विनोबा भावे की विचारधारा से शायद ही कोई बुद्धिजीवी अछूता रहा हो। नाटककार शिवकुमार चवरे ने भी 'सबै भूमि गोपाल की' नामक लघुरूपक के माध्यम से, गाँधी के सत्य-अहिंसा और विनोबा के भूदान-यज्ञ को अपनी लेखकीय कृतज्ञता समर्पित की है। इस एकांकी के मुख्य पात्रों में आचार्य विनोबा भावे के अलावा बाकी पात्र भगवान विष्णु, लक्ष्मी, सूर्य, चन्द्र, इन्द्रादि गौलोकवासी हैं। एक ओर स्वर्ग के देवता पृथ्वी पर अपना अधिकार जताने के लिए लालायित हैं, दूसरी ओर पृथ्वी पर हाड़-माँस के दुबले-पतले दो प्राणी, गाँधी और विनोबा जन-जन में त्याग और सेवा की अलख जगाते हैं। नाटककार ने पृथ्वी पर अपने देश के महापुरुषों का, स्वर्ग के देवताओं से भी ऊँचा आदर्श प्रस्तुत किया है। उनकी देशप्रेम-भावना वंदनीय है।

कथातत्व

एक बार स्वर्गलोक के देवताओं में बहस छिड़ गई। देवता सोचने लगे कि, चूँकि मृत्युलोक पर उनके बहुत उपकार हैं अतः धरती पर भी उनका अधिकार है। सूर्यनारायण धरती को ताप और शक्ति देते हैं। चन्द्रदेव उन्हें शीतलता प्रदान करते हैं। मारुत प्राणवायु देते हैं तो वरुण जल सेवा करते हैं। इन्द्रदेव सभी देवताओं के मुखिया हैं अतः पूरी पृथ्वी पर उन्हीं को अधिकार प्राप्त होना चाहिए। अंततः सभी देवता भगवान विष्णु के समक्ष उपस्थित हुए। भगवान ने उनकी बातें सुनकर कहा - ''देवताओं! आपकी समस्या तो व्यर्थ का विवाद है। पृथ्वी, मृत्युलोक है, वहाँ तो पृथ्वीवासियों का अधिकार होना चाहिए। वहाँ पुण्य भोगने वाले देवताओं का अधिकार कैसा? देवता पृथ्वी के निर्माता नहीं हैं, वे तो पृथ्वी के रक्षक हैं। हितचिंतक हैं। पृथ्वी पर फैला वैभव भी तो देवताओं का ही वरदान है। दान दी गई वस्तु पर अधिकार जताना अनुचित है। देवतागण निरुत्तर होकर लौट गए। लक्ष्मी ने कहा - ''प्रभु! आपकी माया विचित्र है। यहाँ तो आपने देवताओं को संतुष्ट कर दिया परंतु वहाँ पृथ्वीलोक पर महाभारत मची हुई है। मनुष्य अधिकार के लिए लड़-मर रहे हैं।'' भगवान लक्ष्मी को समझाते हैं कि ''पृथ्वी पर युग बदल रहा है। भारत में शांति का अवतार गाँधी पैदा हो गया है। उसके सत्य और अहिंसा के शस्त्रों ने नवजागृति पैदा कर दी है।'' आश्चर्य और उत्सुकता से भरी लक्ष्मी, भगवान् विष्णु के साथ उनकी लीला देखने के लिए पृथ्वीलोक पधारती है। नर-नारी के वेश में विष्णु और लक्ष्मी एक और चमत्कार देखने के लिए आचार्य विनोबा के आश्रम में पहुँचते हैं। वे देखते हैं कि विनोबा के आह्वान पर लोग स्वेच्छा से अपनी कृषि भूमि दान कर रहे हैं। वे इस परोपकारी संत के भू-दान यज्ञ को देखकर हर्षित होते हैं। सभा समाप्त होने पर वे विनोबा को आशीर्वाद देकर महापुरुष की जय-जयकार करते हुए अंतर्ध्यान हो जाते हैं। सजल नेत्रों से आचार्य विनोबा भावे प्रभु का धन्यवाद करते हैं और 'रघुपति राघव राजा राम' गाने लगते हैं।

सबै भूमि गोपाल की

विधा	:	एकांकी रूपक
कथानक	:	काल्पनिक
देशकाल	:	स्वातंत्र्योत्तर भारतभूमि
मुख्य पात्र	:	विनोबा भावे, भगवान विष्णु, लक्ष्मी, देवगण
मंचन	:	खंडवा (सन् 1956)

हमको जीने दो

सभ्यता और सहृदयता की सारी हदें पार करते हुए मनुष्य के लालच की कुल्हाड़ी सदियों से निरीह पेड़ों को विखंडित करती आई है। परंतु इन मूक प्राणियों ने कभी भी जुल्म के विरुद्ध आवाज नहीं उठाई। क्या परोपकार का, ऐसा पीड़दायक पुरस्कार मिलना चाहिए ? उनके अचेतन में भी हूक तो उठती होगी। इसी मनोदशा को नाटककार ने अपनी कलम की नोक पर थामकर इस लघु एकांकी में उतारा है। उन्होंने बड़ दादा के सभापतित्व में, पीपल, आम, नीम, बाँस, पलाश, आदि वृक्षों के प्रतिनिधियों की बैठक बुलवाई। मूक तरुवरों के मन की बात सुनी और सुनाई। पीड़ित पेड़ों की इसी व्यथा-कथा का नाम है 'हमको जीने दो', जो कि नाटककार की एक उम्दा पर्यावरण प्रबोधक प्रस्तुति है।

कथासार

पीलीभीत के जंगल में रात का अंधेरा छाया हुआ है। वटवृक्ष के सभापतित्व में विभिन्न वृक्षों के प्रतिनिधियों की एक विशाल सभा जुटी है जिसका संचालन सागौन कर रहे हैं। बरगद ने पेड़ों के इस अनोखे संगठन का आगाज करते हुए सबके लिए मंच खोल दिया। सभी प्रतिनिधियों ने बारी-बारी से पेड़ बिरादरी पर मनुष्यों के जुल्म को बेखौफ बयाँ किया। सागौन ने कहा कि यद्यपि मकान बनाने के लिए सीमेंट लोहा आदि खोज लिया गया है फिर भी मनुष्य के लालच के चलते सागौन की कटाई चल रही है और इस लकड़ी का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। बाँस ने बताया कि कागज के कारखाने वालों ने मेरे वंश का ऐसा नाश किया है कि अंतिम समय में ठठरी बनाने के लिए आम आदमी को दो बाँस तक नसीब नहीं होते। आम का दर्द भी अब खास हो गया है। पुरानी पीढ़ी के लगाए फल अब चुकने लगे हैं। नई पीढ़ी के पास अब पेड़ लगाने के लिए न तो स्थान है, न समय। पीपल गए, शुद्ध वायु गई, न हरियाली बची, न छाँव। जहाँ देखो चौड़ी-चौड़ी सड़कें और बिल्डिंग। सभी पेड़ों ने अपनी-अपनी करुण कहानी कह दी, परंतु उनके पास इसका कोई निदान नहीं निकल पाया। रात के अंधेरे में पता नहीं कब कोई नशे में धुत ट्रक वाले आकर पेड़ों के तनों पर आरे चलाने लग जाएँ, इसलिए ठूँठ की अगुआई में सभी प्रतिनिधि पेड़ नारा लगाते हैं - ''जीवन सबके लिए है... हमको जीने दो।''

हमको जीने दो

विधा	:	लघु एकांकी रूपक
कथावस्तु	:	वन सम्पदा के दोहन की व्यथा कथा
मुख्य पात्र	:	बरगद, सागौन, पीपल, सागौन, पलाश, ठूँठ आदि
देशकाल	:	पीलीभीत के जंगल में रात्रि सभा
मंचन	:	खंडवा

पंचशील

इस एकांकी में नाटककार ने मानव को अपने हत्कर्मों की पीड़ा और परिणति से मुक्ति दिलाने की युक्ति सुझाई है। परमपिता परमेश्वर सहित पंच महाभूतों ने पंचतत्व के पुतलों को पंचशील का पाठ पढ़ाया है।

हमारे नीतिशास्त्रों में पंच-अंकतंत्र का बहुत महत्व है। पंच महाभूत सृष्टि नियामक परमेश्वर की आदि शक्तियाँ हैं। इन्हीं शक्तियों के अंश से हमारी पंच तात्विक काया का निर्माण हुआ है। पंचशील, सिद्धान्तों का नाम है। पंचशील के पारंपरिक सिद्धांत में अस्तेय (चोरी न करना), अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य और मादक पदार्थों का त्याग आता है जबकि स्वातंत्र्योत्तर भारत में पंचशील सिद्धान्त की नींव अखंडता, प्रभुसत्ता, आक्रमण न करना, हस्तक्षेप न करना, समानता नीति तथा शान्तिपूर्ण अस्तित्व के आधार पर देश के प्रथम प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने रखी थी। कोई भी सजग साहित्यकार समकालीन संवेदनाओं से अप्रभावित नहीं रह सकता। सुधी नाटककार शिवकुमार चवरे ने पंचतात्विक मानव की पीड़ा का पंच महाभूत शक्तियों के माध्यम से पंचशील के सिद्धान्तों में सहज समाधान खोजा है। यह एकांकी अभिनय की अपेक्षा संवाद-प्रधान है। इसमें दैवी शक्तियों का मानवीकरण भी हुआ है।

कथासार

कुछ स्त्री-पुरुष अपनी पीड़ा को व्यक्त करने के लिए धरती माता की शरण में आते हैं। धरती माता उन्हें कष्ट निवारण हेतु वायुदेव की शरण में भेज देती है। वायुदेव उनकी पीड़ा का कारण कर्मों की अशुचिता बताते हुए उन्हें अग्निदेव के पास भेज देते हैं। अग्नि उन्हें वरुण देव के पास और वरुण देव, आकाश के पास भेजते हैं। आकाशदेव कहते हैं, हम पाँचों महाभूत तो विश्व नियंता परमात्मा के संकेतों पर काम करते हैं। सब लोग ईश्वर की शरण में आते हैं। ईश्वर कहते हैं - ''मानव ! मेरी आत्मा तो तुम्हीं में निवास करती है। अतः अपना उद्धार तुम्हें खुद करना पड़ेगा। जो कार्य तुमने अब तक मानव विनाश के लिए किए हैं उन्हीं कार्यों को अब तुम्हें मानव कल्याण की भावना से करना होगा। पंचशील ही पंचमहाभूतों की शुद्धि का महामन्त्र है। पंचशील को अपनाओ। जाओ, कल्याण होगा।'' धरती अपने पुत्रों से कहती है - ''पुत्रो ! परमपिता के उपदेश में ही तुम्हारी भलाई है। जाओ पंचशील का प्रचार करो। भारत भाग्यवान है जहाँ जवाहरलाल नेहरू जैसे पुरुष ने जन्म लेकर, पंचशील का महामन्त्र दिया।''

पंचशील

विधा	:	एकांकी
कथानक	:	पंचशील के सिद्धान्त पर आधारित
रचनाकाल	:	बाल दिवस सन् 1958
पात्र	:	ईश्वर, देवतागण, स्त्री-पुरुष
मंचन	:	खंडवा

दुकान नम्बर 420

रोजमर्रा के जीवन में जिन विसंगतियों से हमारा पाला पड़ता रहता है उनमें से एक है राशन की दुकान। यह सरकारी व्यवस्था इतनी अजीब नहीं लगती जितनी हमारे कृषिप्रधान देश में राशन की दुकान पर किसानों की लंबी कतारें। इस विडम्बना के पीछे जो कारण है उसकी पड़ताल में नाटककार शिवकुमार चवरे जैसे किसी विरले की ही सोच काम कर सकती है। नगदी फसल और व्यक्तिगत स्वार्थ के चलते बहुत से किसान गाँजा, सोयाबीन, कपास आदि पैदा करते हैं, जबकि अनाज खरीद कर खाते हैं। यदि सभी किसान ऐसा करने लगे तो देशवासियों को अनाज कहाँ से मिलेगा। ऐसे में विदेशी अनाज और राशन की दुकानों पर ही तो आश्रित रहना पड़ेगा। इसी विचार को लेखक ने एकांकी 'दुकान नम्बर 420' का कथानक बनाया है।

कथासार

राशन की दुकान का क्रमांक है चार सौ बीस। बाहर सूचना पट पर दी गई जानकारी के अनुसार दुकान में विदेशी गेहूँ और जुवार के अलावा कुछ भी उपलब्ध नहीं है। दुकान में आने वाला हर व्यक्ति राशन और शासन को कोसता जाता है। 15 दिन में प्रति व्यक्ति एक किलो अनाज का कोटा निर्धारित है जो कि प्रायः उपलब्ध नहीं रहता है। दुकानदार द्वारा की जाने वाली हेराफेरी जगजाहिर है। फिर भी लोग राशन की दुकान पर आते हैं, उनकी मजबूरी है।

एक ग्रामीण बुजुर्ग किसान थका-माँदा दुकान पर आता है और हमेशा की तरह स्टाक न होने पर बड़बड़ाता है। दुकान पर नवयुवक मोहन से बुजुर्ग की मुलाकात होती है। मोहन बुजुर्गवार किसान को समझाता है कि कैसे किसान के देश में अनाज की कमी हो रही है। वृद्ध की समझ में बात आ जाती है। वह अपनी, किसानों की, गलती को मानकर प्रण करता है कि अब से वह नगदी फसल का मोह छोड़कर अनाज उत्पन्न करेगा और दूसरे किसानों को भी जागरूक करेगा।

दुकान नम्बर 420

विधा	:	लघु एकांकी रूपक
कथावस्तु	:	नगदी फसल की लालच से देश में खाद्यान्न की समस्या
मुख्य पात्र	:	दाजी, मोहन, दुकानदार, नौकर आदि
देशकाल	:	आजाद भारत के एक कस्बे में सरकारी राशन की दुकान
मंचन	:	खंडवा

सुख की खोज

श्रम की महिमा प्रतिपादित करते हुए 'सुख की खोज' नामक लघु रूपक में नाटककार ने साधारण पात्रों के माध्यम से असाधारण संदेश दिया है। नाटक के सूत्रधार गुरुजी द्वारा देश के भावी नागरिकों को सुख के महामंत्र, 'परिश्रम' की प्रायोगिक शिक्षा दिलवाकर, व्यवसाय से शिक्षक और प्रतिभा से नाटककार बने दादा शिवकुमार चवरे ने, जीवन और समाज में बड़े परिवर्तन के लिए, गुरु की भूमिका को रेखांकित किया है। रचनाकार बखूबी जानता है कि यदि देश को सुखी और संपन्न बनाना है तो पाठशालाओं में विद्यार्थियों को कर्मप्रधान शिक्षा से संस्कारित करना होगा। कक्षाओं में पढ़ाई के साथ-साथ उन्हें जीवन के क्षेत्र में परिश्रम का प्रशिक्षण भी देना ही होगा। श्रम से ही सफलता मिलती है। यही सुख का महामंत्र है।

आज हम जिस प्रायोगिक शिक्षा की बात करते हैं, उसे पचास-साठ साल पहले दादा की दूरदर्शी सोच ने, अपने अध्यापन के अलिखित पाठ्यक्रम में सम्मिलित करके अपने नाटकों में भी सुलिखित कर दिया था।

चार दृश्यों वाले इस लघु रूपक के दो दृश्यों में, दो हास्य-व्यंग्य अंतर्कथाएँ हैं, जो पहली नजर में भले ही सतही लगती हों परंतु वे रचनाकार के हेतु की पोषक हैं। इनमें नाट्यकला के प्रमुख तत्व, वाचिक-अभिनय, शिद्दत से मुखरित हुआ है। पात्रों के छात्रसुलभ संवाद और स्वाभाविक अभिनय के मध्य से एक महान एवं स्पष्ट उद्देश्य की घूँटी, बिना किसी अनुपान के, दर्शकों को गटकवाने में नाटककार को पूर्ण सफलता मिली है।

कथासार

कक्षा में गुरुजी विद्यार्थियों को पूर्व पाठित एक कविता का अभ्यास करा रहे हैं। एक विद्यार्थी कविता में श्रम की महिमा गाता है -सब

श्रम करो, परिश्रम करो
यही है सुख का मंत्र महान
इसी में बसते हैं भगवान...

पाठशाला में प्रति सप्ताह एक निश्चित दिन श्रमदान पढ़ाया और कराया जाता है। गुरुजी श्रम का महत्व समझाते हुए कहते हैं कि, 'बिना श्रम मनुष्य एक क्षण भी नहीं रह सकता। साँस लेने से लेकर मनुष्य का प्रत्येक कार्य श्रम है। परंतु व्यक्तिगत श्रम को सर्वहिताय, सामूहिक श्रम में बदलकर, मानव-समाज का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। विकास का अर्थ है, सीमाएँ बढ़ाना। परंतु जब तक व्यक्ति की सीमाएँ बढ़कर आपस में मिल नहीं जाती विकास विशाल और सामूहिक नहीं हो सकता। इसलिए चलो जनपद में जाकर परिश्रम के पाठ को चरितार्थ करो।' गुरुजी छात्रों को क्षेत्रवार बाँटकर उन्हें सप्ताहांत में आकर अपने प्रायोगिक कार्यों की प्रगति बताने को कहते हैं। छात्र, गुरुजी का आशीर्वाद लेकर प्रस्थान करते हैं।

दूसरे दृश्य में पेटू और घपला के संवाद हास्य का वातावरण उत्पन्न करते हैं। गुरुजी के शिष्य मोहन, पेटू, घपला आदि मिलकर मंदिर के आसपास पड़ी बंजर भूमि को श्रमदान से उपजाऊ बनाकर उसमें फल, सब्जी, अनाज उगाते हैं।

तीसरे दृश्य में एक परेशान लड़के की छोटी सी अंतर्कथा है। गाँव में पैसे देकर भी उसे कोई कुली नहीं मिलता है। वह अपना सामान स्वयं उठाना नहीं चाहता है। गुरुजी का शिष्य दिलीप उसका सामान उठाकर मदद करता है। उसे श्रम का महत्व समझाते हुए कहता है कि हम श्रम से सने हाथों से ही जीवन की सच्ची कहानी लिख सकते हैं। चौथे दृश्य में विद्यार्थी अपने-अपने श्रम कार्यों से गुरुजी को अवगत कराते हैं। गुरुजी कहते हैं, सच्ची शिक्षा और सेवाभाव से यदि देश के करोड़ों

हाथ श्रम में जुट जाएँ तो भारत स्वर्ग बन सकता है। सुख और संपन्नता की यही कुंजी है। 'यही है सुख का मंत्र महान। इसी में बसते हैं भगवान। सब श्रम करो, परिश्रम करो।'

सुख की खोज

विधा	:	लघु नाटक
देशकाल	:	सर्वकालिक
पात्र	:	गुरुजी, मोहन, दिलीप, पेटू, घपला, लड़का
रचनाकाल	:	26 जनरी 1957
मंचन	:	बालिका कला मंदिर, खंडवा

निमाड़ी नाटिकाएँ

श्री शिवकुमार चवरे ने तीन निमाड़ी नाटिकाएँ लिखी हैं। ये लोक जनजीवन से जुड़ी स्त्री पात्र प्रधान लघु आकार मंच प्रस्तुतियाँ हैं। इनके लेखन में इन्होंने साहित्य के कला पक्ष पर पूरा जोर दिया है। हमारा हिन्दुस्तान गाँवों में बसता है। वहाँ जीवन सीधा-सादा परंतु कठिनाईयों भरा होता है। ग्रामीण परिवेश, अशिक्षा, अनभिज्ञता और रूढ़िवादी परंपराओं में जकड़ा हुआ है। ध्यातव्य है कि ये रचनाएँ आज से पचास वर्ष पूर्व की हैं। इनमें समस्याओं के साथ ही उनके समाधान भी सुझाए गए हैं। चूँकि समाधान दृश्य काव्य के माध्यम से ग्रामीणजनों तक पहुँचाना उनका उद्देश्य था अतः उन्होंने इन नाटिकाओं को बहुत ही सरल शब्दों में हास्य रस के अनुपान के साथ प्रस्तुत किया, ताकि बात सीधे-सीधे उनकी समझ में आ सके जिनके कल्याणार्थ लिखा जाए। यही कारण है कि इन नाटिकाओं की भाषा और प्रस्तुति सरल, सहज और स्वाभाविक है। इनमें ग्रामीणों से जुड़ी छोटी-छोटी विसंगतियों को दर्शाया गया है। तीनों रचनाओं में लेखक अलग-अलग उद्देश्य लेकर चला है।

पहली रचना 'नानी माय' में कल्पना की गयी है कि 20-25 वर्षों बाद ग्रामीण भारत कैसा होगा और तब, इतिहास बन चुके 'अब' पर दृष्टिपात करने से कैसी अनुभूति होगी।

दूसरी नाटिका 'नाना को याव' में विचार यह है कि अशिक्षा और कुरीतियों पर चर्चा करने के बजाय यदि लोगों को उनकी दिनचर्या, उसी रूप में मंच पर दिखाई जाए जिस रूप में वे गलत जी रहे हैं, तो स्वाभाविक रूप से उनके मस्तिष्क में विचार कौंधेगा कि अरे ! ये हम क्या कर रहे हैं ? फिर अपनी कमियों को वे खुद आँकेंगे और नाटिका में दिखाए समाधान की तर्ज पर बदलाव की इच्छा उनमें स्वतः जाग्रत होगी।

तीसरी प्रस्तुति, 'गेंदा माय' में आसपास की रूढ़िगत दो समस्याओं को उठाया है और उनका समाधान भी आसपास में ही, ढूँढा गया है।

सामाजिक संवेदनाओं की गहरी पकड़ नाटककार की अद्‌भुत प्रतिभा की परिचायक है।

नानी माय

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, नाटककार ने बीस वर्ष बाद के गाँवों की कल्पना पर 'नानी माय' का कथानक गढ़ा है। नाटिका की वयोवृद्ध पात्र नानी माय की पौत्री दीप्ति अब पायलट है। वह अपनी सहेलियों को नानी माय से मिलाती है। सभी सखियाँ नानी माय के समकालीन ग्रामवासियों की दूसरी-तीसरी पीढ़ियों की संतानें हैं। आज ये सभी उच्च शिक्षित, प्रबुद्ध एवं संपन्न जीवन जी रही हैं। परिचय के दौरान नानी माय को इनके पूर्वजों के दिन याद आते हैं। युवतियाँ नानी माय के श्रीमुख से अपने घर-परिवार-गाँव की बीते जमाने की बातें बड़े चाव से सुनती-समझती हैं। इस हास्य नाटिका में निमाड़ी लोकभाषा और लोकाचार का समुचित प्रयोग किया गया है।

गेंदा माय

यह एक शिक्षाप्रद हास्य प्रस्तुति है। गाँव की लड़कियाँ अपनी शिक्षिका के आह्वान पर घर के आसपास की बेकार पड़ी जमीन में पेड़-पौधे-सब्जियाँ लगाती हैं। पहले तो गेंदा माय इसका विरोध करती हैं। वे चाहती हैं कि लड़कियाँ खेलने-कूदने की उम्र में ही रोटी बनाना और गोबर के कंडे थापना सीख लें ताकि शादी के बाद नई गृहस्थी में सुखी रह सके। परंतु बाद में लड़कियों के समझाने पर अपनी विचारधारा बदल देती है।

दूसरी घटना में पहले वह अपनी मासूम बहू को गाँव के बाहर सुदूर चक्की पर अनाज पिसवाने जाने के लिए मजबूर करती है, बाद में पौत्री गीता की सहेलियों के समझाने पर कि घर की घट्टी के प्रयोग से पैसा और समय बचता है; साथ ही मेहनत से स्वास्थ्य भी ठीक रहता है, वह मान जाती है। इस प्रकार नई सोच, पुरानी सोच को प्रभावित करती है।

नाना को याव

ग्रामीण परिवेश की एक पारिवारिक प्रस्तुति है। शहरी चमक से दूर भोले-भाले लोगों की छोटी-छोटी समस्याएँ अशिक्षा और अज्ञान से जन्म लेती है। वकीलन मुक्ता का बेटा निरक्षर भट्टाचार्य है। वह चार वर्षों से दूसरी कक्षा में अटका हुआ है। मुक्ता अपनी सहेली पटवारन जानकी के घर जाकर उसकी बेटी, नाजुक को अपनी बहू बनाने की इच्छा जताती है। जानकी असमंजस में है क्योंकि एक तो वह गरीब है, दूसरे उसकी लड़की मंदबुद्धि है। बीस साल की उम्र में भी वह चौथी कक्षा में रुकी हुई है। अंततः दोनों परिवारों में बात तय हो जाती है, और शादी हो जाती है। माता-पिता बच्चों को शिक्षा और समझ देने की अपेक्षा ब्याह-शादी में अधिक रुचि लेते हैं। परिस्थितिजन्य हास्य दर्शकों को बाँधे रखता है। ऊपर से मात्र मनोरंजक लगने वाली इस नाटिका के दौरान दर्शक अपने आप को आईने के सामने पाता है।